वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २५

ISSN 2582-0656
9 772582 065005

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६२ अंक ११ नवम्बर २०२४

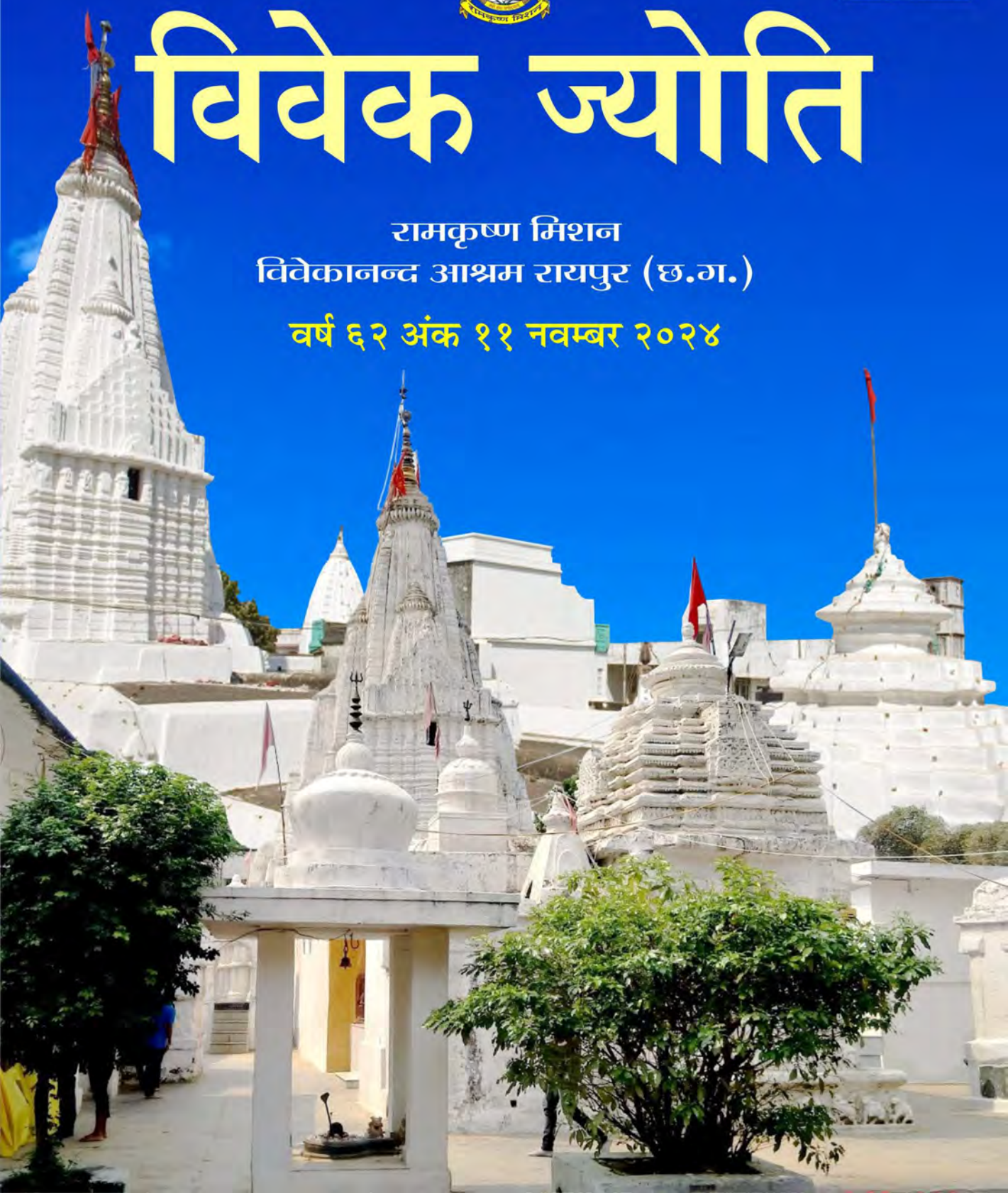

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६२

अंक ११

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

कार्तिक, सम्वत् २०८१

नवम्बर, २०२४

अनुक्रमणिका

* पवित्रता ही स्त्री और पुरुष का सर्वप्रथम धर्म है : विवेकानन्द ४८६
* देवी जगद्धात्री का स्वरूप (स्वामी ईशानन्द) ४८९
* भगवान्निवासो मन्दिरम् (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) ४९२
* (बच्चों का आंगन) छोटा वैज्ञानिक आर्यन (श्रीमती मिताली सिंह) ४९५
* इच्छा छोड़ो, दिव्य हो जायोगे (स्वामी सत्यरूपानन्द) ४९९
* शास्त्रों में लोक महापर्व छठ (उत्कर्ष चौबे) ५०१
* (युवा प्रांगण) जीवन-नौका की पथप्रदर्शिका : बुद्धिमत्ता और प्रज्ञता (स्वामी गुणदानन्द) ५०५
* भारतीय चिन्तन में शक्तितत्व (प्रो. युगल किशोर मिश्र) ५०८
* पंजाबी साहित्यिक परम्परा में 'आदिग्रन्थ' का स्थान (ए.पी.एन.पंकज) ५१०
* छत्तीसगढ़ का शिवरीनारायण मन्दिर (डॉ. प्रदीप कुमार शर्मा) ५१६
* भाई दूज (श्रीमती जगदीश्वरी चौबे) ५१८
* (कविता) काली काली नित्य भजूँ मैं (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ५०७
* (स्तोत्र) महाकाली-स्तोत्रम् (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी') ५०७
* (कविता) छाई है छठ की छटा (श्रीधर द्विवेदी) ५१५

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ४८५
पुरखों की थाती ४८५
सम्पादकीय ४८७
रामगीता ४९६
प्रश्नोपनिषद् ५००
श्रीरामकृष्ण-गीता ५०७
गीतातत्त्व-चिन्तन ५२०
साधुओं के पावन प्रसंग ५२३
समाचार और सूचनाएँ ५२५

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ***०९८२७१ ९७५३५*** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २५/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	३००/-	१५००/-	
भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा ।			

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ का मन्दिर छत्तीसगढ़ के जाँजगीर-चाँपा जिले में स्थित है, जो शिवरीनारायण मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। **विशेष जानकारी हेतु पृष्ठ ५१६ पर देखें।**

नवम्बर माह के जयन्ती और त्यौहार

१३	स्वामी सुबोधानन्द
१४	स्वामी विज्ञानानन्द
१२,२६	एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.)	८००१/-

आवश्यक सूचना

विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी १८ नवम्बर, २०२४, सोमवार से २६ नवम्बर, २०२४, मंगलवार तक छात्र-छात्राओं के लिये विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जायेगा।

२ जनवरी, २०२५, गुरुवार से ८ जनवरी, २०२५, बुधवार तक वृन्दावन धाम के प्रसिद्ध भागवत प्रवचनकार पं. अखिलेश शास्त्री जी का श्रीमद्भागवत पर प्रवचन होगा।

१२ जनवरी, २०२५, रविवार को प्रातः ९.३० से १२.३० तक राष्ट्रीय युवा दिवस एवं पुरस्कार-वितरण समारोह का आयोजन किया जायेगा।

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । — स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र २१००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **— व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष — 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. २०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

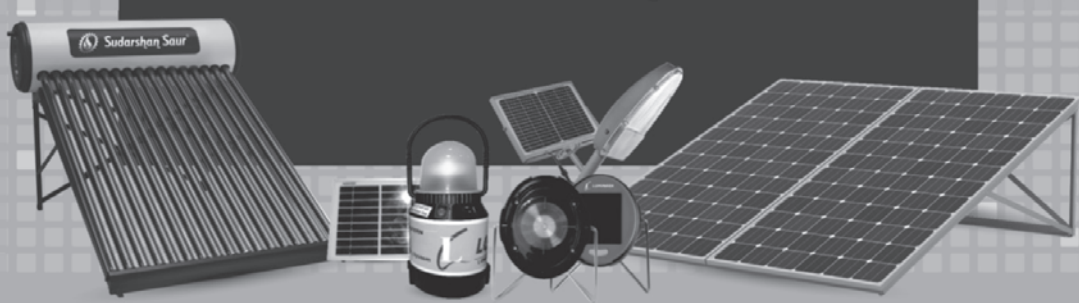

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६२ नवम्बर २०२४ अंक ११

कालीस्तुतिः

तव रूपं महाकालो जगत्संहारकारकः।
महासंहारसमये कालः सर्वं ग्रसिष्यति।।
कलनात्सर्वभूतानां महाकालः प्रकृतितः।
महाकालस्य कलनात्त्वमाद्या कालिका परा।।

– हे माता ! जगत्संहारकारक महाकाल तुम्हारा ही रूप है, महाप्रलय के समय काल ही समस्त सृष्टि का भक्षण करेगा।

समस्त प्राणियों का ग्रासकारी होने के कारण वह महाकाल के नाम से प्रख्यात है, किन्तु महाकाल को भी ग्रास करने के कारण तुम परात्परा आद्या कालिका हो।

पुरखों की थाती

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये
महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा
रक्षन्ति पुण्यानि पुरा कृतानि।।८४८।।

(भर्तृहरि)

– मनुष्य द्वारा पहले के किए हुए पुण्य ही घोर वन में, युद्धक्षेत्र में, शत्रुओं के बीच में, जल या अग्नि से घिरे रहने पर, महासागर में या पर्वत की चोटी पर; निद्रा, प्रमाद अथवा संकट की अवस्था में उसकी रक्षा करते हैं।

वागाडम्बरवान् लोके न किञ्चित्कर्तुमर्हति।
गर्जद्घनाः न वर्षन्ति न गर्जन्ति घनाघनाः।।८४९।।

– संसार में जो लोग केवल बड़ी-बड़ी बातें बनाते रहते हैं, वे व्यावहारिक जीवन में प्रायः कुछ कर नहीं पाते। जैसे गरजते हुए बादल बरसते नहीं, परन्तु बरसनेवाले बादल गरजते नहीं।

वाणी रसवती यस्य, यस्य श्रमवती क्रिया।
लक्ष्मीः दानवती यस्य, सफलं तस्य जीवितम्।।८५०।।

– इस संसार में उसी मनुष्य का जीवन सफल है, जिसकी वाणी मधुर हो, जो परिश्रमपूर्वक कर्म करता हो और जिसके धन का दान में उपयोग होता हो।

पवित्रता ही स्त्री और पुरुष का सर्वप्रथम धर्म है : विवेकानन्द

पवित्रता ही स्त्री और पुरुष का सर्वप्रथम धर्म है। ऐसा उदाहरण शायद ही कहीं हो कि एक पुरुष, जितना भी पथ-भ्रष्ट क्यों न हो गया हो, अपनी नम्र, प्रेमपूर्ण तथा पतिव्रता स्त्री द्वारा ठीक रास्ते पर न लाया जा सके। संसार अभी भी उतना गिरा नहीं है। हम बहुधा संसार में बहुत-से निर्दय पतियों तथा पुरुषों के भ्रष्टाचरण के बारे में सुनते रहते हैं, परन्तु क्या यह बात सच नहीं है कि संसार में उतनी ही निर्दय तथा भ्रष्ट स्त्रियाँ भी हैं? यदि सभी स्त्रियाँ इतनी शुद्ध और पवित्र होतीं, जितना कि वे दावा करती है, तो मुझे पूरा विश्वास है कि समस्त संसार में एक भी अपवित्र पुरुष न रह जाता। ऐसा कौन-सा पाशविक भाव है, जिसे पवित्रता और सतीत्व पराजित नहीं कर सकता? एक शुद्ध पतिव्रता स्त्री, जो अपने पति को छोड़कर अन्य सब पुरुषों को पुत्रवत् समझती है तथा उनके प्रति माता का भाव रखती है, धीरे-धीरे अपनी पवित्रता की शक्ति में इतनी उन्नत हो जायेगी कि एक अत्यन्त पाशविक प्रवृत्तिवाला मनुष्य भी उसके सान्निध्य में पवित्र वातावरण का अनुभव करेगा। इसी प्रकार प्रत्येक पति को, अपनी स्त्री को छोड़कर अन्य सब स्त्रियों को अपनी माता, बहन अथवा पुत्री के समान देखना चाहिए। विशेषकर उस मनुष्य को, जो धर्म का प्रचारक होना चाहता है, यह आवश्यक है कि वह प्रत्येक स्त्री को मातृवत् देखे और उसके साथ सदैव वैसा ही व्यवहार करे। (३/४२)

मेरे विचार से पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श को प्राप्त करने के लिए किसी भी जाति को मातृत्व के प्रति परम आदर की धारणा दृढ़ करनी चाहिए और वह विवाह को अछेद्य एवं पवित्र धर्म-संस्कार मानने से हो सकती है। रोमन कैथोलिक ईसाई और हिन्दू विवाह को अछेद्य और पवित्र धर्मसंस्कार मानते हैं, इसलिए दोनों जातियों ने परम शक्तिमान महान ब्रह्मचारी पुरुषों और स्त्रियों को उत्पन्न किया है। अरबों के लिए विवाह एक इकरारनामा है या बल से ग्रहण की हुई सम्पत्ति, जिसका अपनी इच्छा से अन्त किया जा सकता है, इसलिए उनमें ब्रह्मचर्यभाव का विकास नहीं हुआ है। जिन जातियों में अभी तक विवाह का विकास नहीं हुआ था, उनमें आधुनिक बौद्ध धर्म का प्रचार होने के कारण उन्होंने संन्यास को एक उपहास बना डाला है। इसलिए जापान में जब तक विवाह के पवित्र और महान आदर्श का निर्माण न होगा, (परस्पर प्रेम और आकर्षण को छोड़कर) तब तक, मेरी समझ में नहीं आता कि वहाँ बड़े-बड़े संन्यासी और संन्यासिनियाँ कैसे हो सकते हैं। जैसा कि आप अब समझने लगी हैं कि जीवन का गौरव ब्रह्मचर्य है, उसी तरह जनता के लिए इस बड़े धर्म-संस्कार की आवश्यकता जिससे कुछ शक्तिसम्पन्न आजीवन ब्रह्मचारियों की उत्पत्ति हो। मेरी भी समझ में आने लगी है। (८/३९४-९५)

पश्चिम विवाह को विधिमूलक गठबन्धन के बाहर जो कुछ है, उन सबसे युक्त मानता है, जबकि भारत में इसे समाज के द्वारा दो व्यक्तियों को शाश्वत काल तक संयुक्त रखने के लिए उनके ऊपर डाला हुआ बन्धन माना जाता है। उन दोनों को एक-दूसरे को जन्म-जन्मान्तर के लिए वरण करना होगा, चाहे उनकी इच्छा हो या न हो। प्रत्येक एक-दूसरे के आधे पुण्य का भागी होता है। यदि एक इस जीवन में बुरी तरह पिछड़ जाता है, तो दूसरे को, जब तक कि वह फिर बराबर नहीं आ जाता, केवल प्रतीक्षा करनी पड़ती है, समय देना होता है। (८/१४०)

सम्पादकीय

लोक-पर्वों में आध्यात्मिकता

भारत विविध धर्मों, भिन्न-भिन्न वर्णों और भिन्न-भिन्न मतावलम्बियों का देश है। यह विश्व का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है। यहाँ विभिन्न सम्प्रदायों के लोग अपने-अपने धर्मानुसार सहज जीवन-यापन करते हैं। विश्व का सबसे प्राचीन सनातन धर्म यहीं की पावन अवतार-उर्वरा भूमि की ऊपज है। भारत की पुण्यभूमि ऋषि-मुनियों, आचार्यों और ईश्वरावतारों की भूमि है, जिन्होंने समय-समय पर जगत को सन्मार्ग में प्रेरित किया है। भारतीय शास्त्र सदा लोकमंगल की कामना करते हैं और जन-मानस को शाश्वत आनन्द की प्राप्ति का मार्गदर्शन करते हैं। एक ओर जहाँ वेद 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की प्रार्थना करते हैं, तो दूसरी ओर 'संगच्छध्वं संवदध्वं' का आचरण करने का व्यावहारिक रूप भी प्रदान करते हैं। भारतवासी भिन्न-भिन्न वेश-भूषा, संस्कार में जीवन-यापन करते हुये भी एक मानवीय संस्कृति, मानवीय एकता और परस्पर सद्भाव की भावना का सम्प्रेषण जन-मन में करते हैं। किसी ने कितना सुन्दर गाया है –

भिन्न वेश भिन्न भाषा भिन्न धर्मरीति।
कोटि हस्त कोटि पाद हृदय एक भारती।।

विश्व की अनुपम, विलक्षण भारतीय संस्कृति है, जो वसुधैवकुटुम्बकम् की भावना से अनुप्राणित और 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' से सम्पोषित है। यहाँ की सस्यश्यामला भूमि, यहाँ का प्राकृतिक परिवेश सम्पूर्ण जगत को एक आध्यात्मिक संदेश देते हैं। यहाँ के लोक-पर्व धार्मिक जीवन के साथ-साथ आध्यात्मिक उद्दीपन करते हैं और मानव के अन्तःकरण में परमात्म-सुख-प्राप्ति की उद्दीपना करते हैं, इसीलिए लोग सच्चिदानन्दमय सुख के बोध हेतु पुनः उस पर्व की प्रतीक्षा में व्यग्र रहते हैं।

कुछ राष्ट्रीय पर्व हैं, जिसे सम्पूर्ण देश मनाता है। जैसे स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस आदि। इन दिनों में राष्ट्र को स्वतन्त्र करानेवाले स्वतन्त्रता सेनानियों, जन-नायकों, राष्ट्र हेतु बलिदान होनेवाले वीर सपूतों के संघर्षमय जीवन को बच्चों और देशवासियों को बताया जाता है, जिससे उनमें राष्ट्रप्रेम जाग्रत हो, बड़ी कठिनाई से प्राप्त राष्ट्र की स्वतन्त्रता का महत्त्व समझ में आये और इसके संरक्षण एवं सम्वर्धन हेतु उनका कर्तव्य-बोध जाग्रत हो।

उसी प्रकार कुछ धार्मिक पर्व हैं, जिसे भारत के लोग बड़े उल्लास के साथ मनाते हैं। जैसे होली, दिवाली, दुर्गापूजा, श्रीरामनवमी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, प्रकाशपर्व, निर्वाण दिवस, महावीर जयन्ती, श्रीशंकराचार्य जयन्ती, श्रीरामकृष्ण जयन्ती, विवेकानन्द जयन्ती, युवा दिवस आदि।

लोक संस्कृति में कुछ पर्व हैं, जिन्हें स्थानीय स्तर पर मनाया जाता है, लोग इसमें बड़े हर्षोल्लास से भाग लेते हैं। पर्वों में धार्मिक लोकाचार होते हुये भी इनमें आध्यात्मिकता सन्निहित है और मानव के मन में उसी अध्यात्म ज्योति को प्रकाशित करना, उसका स्मरण कराना, उसका दृढ़ चिह्न छोड़ना, उस अनन्त शक्ति की ओर अग्रसर कराना ही इन पर्वों का उद्देश्य होता है। यहाँ हम इस वर्ष नवम्बर मास में आनेवाले कुछ पर्वों की चर्चा करते हैं।

दिवाली – दिवाली को दीपावली भी कहते हैं। दिवाली भारत का प्रमुख पर्व है, जिसे कार्तिक मास की अमावस्या को देश-विदेश में बड़े हर्ष से मनाया जाता है। इस दिन घर-बाहर सर्वत्र कोने-कोने की सफाई की जाती है। स्वच्छता ईश्वरस्वरूप है। हम घर में से कूड़े-कचड़े निकालकर घर को स्वच्छ बनाते हैं। लौकिक रूप से अमावस की रात्रि में सर्वत्र व्याप्त अन्धकार को दूर कर उसे प्रकाशित करने के लिये घर-बाहर चारों ओर दीप जलाया जाता है। चारों ओर दीप जलने के बाद आबालवृद्धवनिता सबको अत्यन्त प्रसन्नता होती है। वास्तव में मानव का मूल स्वभाव सच्चिदानन्दमय है। उसके हृदय में अनन्त ज्योतिर्मय परमात्मा का निवास है। इसलिये मनुष्य सदा प्रकाशमय, चैतन्य और आनन्दित रहना चाहता है। संसार में महामाया के घोर पाश में पड़कर वह अपने स्वरूपगत आनन्द को भूल जाता है। बहिर्मुखी होने के कारण वह अन्तःस्थ नित्य प्रज्वलित आत्मज्योति को देख नहीं पाता और इसलिये दुखित रहता है। किन्तु जब कभी उसे उसकी थोड़ी-सी भी झलक बाह्य जगत में मिलती है, तो वह आनन्दित हो जाता है। इसलिये दिवाली

के दिन सर्वत्र विकीर्ण ज्योति उसे आनन्द प्रदान करती है और उसे अपने अन्त:करण में विद्यमान ज्योति की अनुभूति हेतु प्रेरित करती है। इस अन्त:ज्योतिरानन्द की अनुभूति के लिये ही परम ब्रह्म की ज्योतिर्मयी काली के रूप में आराधना की जाती है। वह परम ब्रह्म ज्योति:स्वरूप है और काली भी ज्योतिर्मयी हैं। योगिनीतन्त्र काली को ज्योतिरूपिणी से संज्ञित करता है –

या सुषुम्नान्तरालस्था चिन्त्यते ज्योतिरूपिणी।
प्रणतोऽस्मि परां धीरां कामेश्वरि नमोऽस्तुते।।

श्रीशंकराचार्य जी लिखते हैं – '**शरच्चन्द्रकोटिप्रभापुञ्ज-बिम्बम्**' (कालिकाष्टम्) – अर्थात् हे माँ ! तेरे तन से शरच्चन्द्र जैसा कोटि प्रभापुंज सदा निकलता रहता है। वास्तव में दिवाली में प्रकाश और प्रसन्नता ब्रह्मस्वरूपिणी श्याम वर्णमयी माँ काली के शरीर से निकलनेवाली दिव्य-ज्योति-प्रभा की अभिव्यक्ति है और जन-मन में प्रसन्नता, आनन्द उनके आनन्दमयी स्वरूप की अभिव्यक्ति है।

इस ब्रह्माण्ड में जितने प्रकार की भी ज्योतियाँ हैं, वे सभी उस परमात्मा की ज्योति से ही प्रकाशित हैं। इसलिये दिवाली का बाह्य प्रकाश भी हमें आनन्दित करता है। चित्त में अंकित अन्धकार के चिह्न को वह प्रकाश नष्ट कर उसमें प्रकाश का चिह्न अंकित कर देता है, इसलिये हम बार-बार उसे स्मरण कर प्रसन्न होते हैं। अत: दिवाली का विभिन्न प्रकार का स्वर्णिम भव्य प्रकाश हमें अन्त:स्थ ज्योतिर्मय परमात्मा के अनुसंधान हेतु प्रेरित करता है और स्मरण दिलाता है कि हम परमात्मा की अनुभूति करें, ईश्वर-दर्शन करें और परमात्मा द्वारा कृपा कर प्रदत्त इस मानव जीवन को धन्य करें।

भाई दूज – भाई दूज कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि को मनाया जाता है। इस दिन बहनें अपने भाई को सुख-सम्पन्नता और दीर्घायु का आशीर्वाद देती हैं और सब प्रकार से उनके मंगल की कामना करती हैं। भाई भी अपनी बहन को यथाशक्ति उपहार देता है और उसकी सभी परिस्थितियों में सर्वप्रकारेण सहायता को तत्पर रहता है। यह पर्व हमें स्मरण दिलाता है कि हम दिवाली के बाह्य चकाचौंध में लोक-व्यवहार और मानवीय सम्बन्धों को न भूलें। दिवाली में सब लोग अपने-अपने में ही व्यस्त रहते हैं। किन्तु हम अपने सम्बन्धों को न भूल जायें, इसलिये जीवन का सबसे पवित्र और आत्मीय सम्बन्ध भाई-बहन का होता है, जिसे हम भाई दूज के रूप में मनाकर परस्पर पारिवारिक सम्बन्ध को अक्षुण्ण रखते हैं। ठीक इसी प्रकार जागतिक सम्बन्धों के द्वारा हममें उस शुद्ध निर्मल प्रेम का संचार होता है, जो हमें ईश्वर की ओर आकर्षित करता है, क्योंकि ईश्वर प्रेममय है। इस प्रेम का ईश्वराभिमुखी समर्पण उसके कुछ दिन बाद आनेवाले छठ-पूजा में दिखाई देता है।

छठ-पूजा – छठ-पूजा कार्तिक शुक्ल की षष्ठी को मनायी जाती है। यह पर्व उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड में विशेष रूप से व्यापक रूप से मनाया जाता है। इसके अतिरिक्त कई राज्यों और देशों में जहाँ-जहाँ इस पर्व के अनुयायी हैं, वे लोग मनाते हैं। यह महापर्व दिवाली और भाई दूज के बाद आता है। मानव एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहता है। उसके स्वस्थ जीवन-यापन में संसार के कण-कण का योगदान है। छठ महापर्व सूर्य को केन्द्रित होते हुये भी ब्रह्म-सृष्टि प्रकृति से संयुक्त है। इस महोत्सव में कई फसलों, पौधों के उपकरणों से पूजा का विधान है। इसमें अपने घर के अतिरिक्त मार्गों-जलाशयों की भी सफाई की जाती है, जिससे अर्घ्य-पूजार्थ जानेवाले व्रतियों को कठिनाई न हो। इस पर्व में घर और घर से बाहर जलाशयों, नदियों के पास जाकर दीपमाला और गन्ना आदि विविध उपकरणों से पूजा करते हैं और स्वयं सपरिवार, सबान्धव पूरी प्रकृति से संयुक्त होते हैं। उसके प्रति कृतज्ञ होते हैं। क्योंकि प्रकृति हमारी जीवन-रक्षिका है। जब घर के आंगन में हरे पत्तों सहित गन्नों से आवृत विभिन्न खाद्य पदार्थों से संयुक्त २४ कलशों पर दीप जलाकर पूजा होती है, तो पूरा घर प्रकाशमय हो जाता है। सबको अत्यन्त प्रसन्नता होती है। दीपमाला के पास बैठकर और रास्ते में जलाशय में पूजार्थ जाते समय माताओं के द्वारा गाये गये गीत अत्यन्त मधुर और चित्ताकर्षक होते है। जैसे –

केरवा जे फरेला घवद से ओई पर सुगा मडराय।
सुगवा के मरबो धेनुख से सुगवा गिरे मरुछाय।
सुगनी जे रोयेली बियोग से सुगा गइले मुरुछाय।
चलेली परबी कोशी भरे बालक दिहले जुठियाय।
नेबुआ मगवली बाजार से बालक दिहले जुठियाय।
तिवही जे रोवेली बियोग से कइसे कोशिया भराई।
छठि मईया हँसेली ठठा के ओहि से कोशिया भराई।

शेष भाग पृष्ठ ४९१ पर

देवी जगद्धात्री का स्वरूप

स्वामी ईशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

जगद्धात्री पूजा विशेष

भारतवर्ष में ईश्वर की उपासना विभिन्न भावों से की जाती है, जिसमें शक्ति उपासना अनन्य है। इस शक्ति उपासना की परम्परा में ईश्वर की मातृशक्ति के रूप में विभिन्न भावों से आराधना की जाती है। जैसे दुर्गा, काली, तारा, जगद्धात्री इत्यादि। हमलोग क्यों विभिन्न रूपों में ईश्वर की उपासना करते हैं? इसका उत्तर शास्त्र देते हैं – **'साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूपकल्पना'।** कारण स्पष्ट है कि प्रत्येक साधक के मन की कल्पना भिन्न-भिन्न होती है। इसी मानसिक कल्पना के कारण उनके भाव और आधार भी भिन्न-भिन्न होते हैं। इसलिए साधकों के कल्याण हेतु 'उपासकानां कार्यार्थं' उनके भावानुयायी ईश्वर विभिन्न रूपों में भक्तों के समक्ष आविर्भूत होते हैं।

भगवान श्रीरामकृष्ण अत्यन्त सुन्दर ढंग से माँ का उदाहरण देते हुए इसे स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं, यदि एक माँ के कई पुत्र हैं, तो वह उनके पाचन के अनुकूल ही किसी के लिए बैगन की मसालेदार रसदार सब्जी, तो किसी के लिए दही बैगन की सब्जी, तो अन्य के लिए बैगन का भाजा बनाती है। इस प्रकार माँ के सदृश ही जगन्माता (ईश्वर) भी विभिन्न रूपों में भक्तों के आधारानुसार आविर्भूत होती हैं।

ईश्वर शब्द का अर्थ क्या है? जो सृष्टि, स्थिति और लय करते हैं, उन्हें ही ईश्वर कहते हैं। 'जन्माद्यस्य यतः' और स्थिति रूप में जब वह जगत का पालन करते हैं, तब उन्हें जगद्धात्री कहते हैं। श्रीरामकृष्ण देव कहते थे, ''जगद्धात्री रूप का आश्रय जानते हो? जो जगत को धारण की हुई हैं। अगर वे धारण न करें, तो जगत धराशायी हो जायेगा।''

दुर्गासप्तशती में ब्रह्माजी ने देवी को 'स्थिति रूपा च पालने' कहकर स्तुति की है। अर्थात् जगत का विध्वंस होने पर उसे स्थिति प्रदान करने के कारण ही जगद्धात्री कहते हैं। तभी तो शास्त्रों में है –

'विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थिति-संहार-कारिणीम्।'

शास्त्रों में बहु वर्णित देवी जगद्धात्री की पूजा अत्यन्त पुरानी होने के बाद भी इसकी प्रसिद्धि अष्टादश शताब्दी में महाराजा कृष्णचन्द्र राय के द्वारा हुई। कहा जाता है कि एक बार वार्षिक कर नहीं देने के कारण नदिया नरेश कृष्णचन्द्र को बंगाल का तत्कालीन नवाब अलिबर्दि खाँ ने कारागार में डाल दिया। जब वे कारागृह से मुक्त हो अपने राज्य लौटे, तब विजयादशमी बीत गई थी। लौटते समय गंगा तट पर उन्होंने ढाक-कॉसर के वाद्यों सहित मातृ निराजन, माँ की आरती देखा। दुर्गोत्सव आयोजित न कर पाने का उन्हें असहनीय दुख हुआ तथा इस हृदयविदारक दुख को न सहन कर पाने से वे नौका पर ही बेहोश हो गये। तभी स्वप्न में उन्हें रक्तवर्णा सिंहारूढ़ा, चतुर्भुजा, सालंकारा महामाया राजराजेश्वरी का दर्शन हुआ। स्वप्न में देवी ने राजा से कहा कि मेरी पूजा नहीं हुई, इससे दुख क्यों करते हो? मैं जिस रूप में तुम्हें दर्शन दे रही हूँ, उसी मूर्ति में मुझे आगामी कार्तिक मास की शुक्ला नवमी तिथि में एक साथ सप्तमी, अष्टमी व नवमी की पूजा करके मेरे चरणों में पुष्पांजलि देने से तुम्हें दुर्गामहापूजा करने का फल प्राप्त होगा। राज-प्रासाद में लौटकर राजा ने पण्डितों से परामर्श कर जाना कि यह तो तन्त्रोक्त देवी जगद्धात्री हैं। इस प्रकार कृष्ण नगर राजप्रासाद से पूजित देवी जगद्धात्री की पूजा का चहुँओर विस्तार हुआ।

देवी दुर्गा ही अन्य रूप में जगद्धात्री हैं तथा दोनों ही अभेद हैं। कार्तिक शुक्ल नवमी को शास्त्रों में दुर्गानवमी कहा जाता है –

कार्तिके शुक्ले पक्षे च या दुर्गानवमी तिथिः।
सा प्रशस्ता महादेव महादुर्गा–प्रपूजने।।

देवी जगद्धात्री का ही दूसरा नाम महादुर्गा है। जगद्धात्री स्तोत्र में कहा गया है –

जय सर्वगते दुर्गे जगद्धात्री नमोऽस्तुते।

जगद्धात्री-पूजा दुर्गापूजा के अनुसार एक ही दिन में सप्तमी, अष्टमी व नवमी पूजा होती है, किन्तु बोधन नहीं होता है।

प्रातश्चसात्त्विकी पूजा मध्याह्ने राजसी मता।
सायाह्ने तामसी पूजा त्रिविधा परिकीर्तिता।।

अर्थात् प्रात:काल सप्तमी की सात्त्विक, अष्टमी की मध्याह्न में राजसिक तथा नवमी की सायंकाल में तामसिक पूजा करने का विधान है। क्योंकि देवी त्रिगुणमयी हैं। इनकी पूजा तंत्रोक्त विधि से होती है। ध्यान मंत्र में उल्लेख नहीं होने के बाद भी मूर्ति में देवी के वाहन सिंह के पदतल में एक हस्तिमुण्ड दिखाई देता है, जिसे आचार्यगण करीन्द्रासुर कहते हैं। देवी माहात्म्य के अनुसार वह महिषासुर ही प्रतीत होता। क्योंकि वह विभिन्न छद्मवेश धारण कर देवी से युद्ध कर रहा था, जिसमें एक गज का भी रूप था।

यहाँ विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि महाराजा कृष्णचन्द्र के पूर्व पन्द्रहवीं शताब्दी में ही आचार्य शूलपाणि ने अपने ग्रन्थ 'कालविवेक' में जगद्धात्री पूजा का उल्लेख किया है –

कार्त्तिके अमलपक्षस्य त्रेतादौ नवमेऽहनि।
पूजयेत्तां जगद्धात्रीं सिंहपृष्ठे निषेदुषीम्।।

अर्थात् कार्तिक मास के अमल पक्ष (शुक्ल पक्ष में) त्रेतायुग की आदि नवमी तिथि में सिंह-पृष्ठ पर अधिष्ठिता देवी जगद्धात्री की पूजा करनी चाहिए। ब्रह्मपुराण के अनुसार इसी तिथि में त्रेतायुग का आरम्भ हुआ था –

कार्तिके शुक्ले पक्षे तु त्रेतायां नवमेऽहनि।

इसके अतिरिक्त कृष्णानन्द आगमवागीश के वृद्ध तन्त्रसार जैसे ग्रन्थों सहित शक्तिसंगम तन्त्र, उत्तर कामाख्या तन्त्र, कुब्जिका तन्त्र तथा भविष्य पुराण में देवी जगद्धात्री के स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है। कात्यायनी तन्त्र में तो देवी की विस्तृत लीला का वर्णन है।

प्राचीन काल में एक बार अग्नि, वायु, वरुण या चन्द्र देव को स्वयं ईश्वर होने का मिथ्या अभिमान हो गया। अहंकार-मत्त हो वे भूल गये कि ब्रह्मशक्ति की अनुकम्पा से ही वे शक्तिशाली हैं। उनके मिथ्या दर्प का नाश करने के लिए उनके सम्मुख अवतरित हुई सुवर्ण भूषणों से आभूषित कोटिचन्द्र समप्रभा एक देवी। देवी का परिचय जानने के लिए जब पवन देव उनके समीप गये, तब देवी ने प्रश्न किया – 'तुम कौन हो? तुम्हारा क्या कार्य है?' मद व उपहास से भरे स्वर में उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया, 'मैं वायु हूँ, इच्छा मात्र से मैं सभी को स्थानच्युत कर सकता हूँ।' तब देवी ने उसी समय वहाँ पर एक तृण रखकर उसे हटाने के लिए कहा। समस्त शक्तियों को लगाने के पश्चात् भी वायु देव उसे जरा भी हिला न सके। अन्तत: हारकर सिर झुकाकर वापस आ गये। यही अवस्था अग्नि, चन्द्र व वरुण देव की भी हुई। अन्तत: हारकर देवगुरु बृहस्पति के आदेशानुसार देवराज इन्द्र के अनुमोदन से उनलोगों ने देवी जगद्धात्री की आराधना की तथा देवी की कृपा से उन्हें सब ज्ञान हुआ। इस प्रकार देवी ने देवताओं का दर्प चूर्ण किया।

हमने देखा कि विभिन्न पुराणों, उपनिषदों में उमा-हेमवती प्रसंग, स्मृतिशास्त्र व तन्त्रों में देवी जगद्धात्री की पूजा का प्रचलन राजा कृष्णचन्द्र के पहले से ही है। उन्होंने केवल इसे जनप्रिय और लोकप्रसिद्ध किया है।

अब हम संक्षिप्त रूप में देवी के ध्यान-मन्त्र का चित्रण करेंगे, जिसमें गूढ़ भावव्यंजक अर्थ निहित है।

सिंहस्कन्धसमारूढां नानालंकारभूषिताम्।
चतुर्भुजां महादेवीं नागयज्ञोपवीतिनीम्।।
शंखशार्ङ्गसमायुक्त वामपाणिद्वयान्विताम् ।
चक्रञ्च पंचबाणाञ्च दधतीं दक्षिणे करे।।
रक्तवस्त्र परिधानां बालार्क सदृशीं तनुम्।
नारदाद्यैमुर्निगणैः सेवितां भवसुन्दरीम्।।
त्रिवलीवलयोपेतनाभिनालमृणालिनीम्।
रत्नद्वीपे महाद्वीपे सिंहासनसमन्विते।।
प्रफुल्लकमलारूढ़ां ध्यायेत्तां भवगेहिनीम्।।

सिंहस्कन्धसमारूढ़ा – देवी सिंहवाहिनी है। जिस देवता का जो भाव होता है, उसके अनुरूप उनके वाहन में भी उसका प्रकाश होता है। राजराजेश्वरी परम शक्ति-स्वरूपिणी देवी जगद्धात्री का वाहन अमितबलशाली पशुराज सिंह है। कालीविला तन्त्र में कहा गया है –

सिंहस्तु हरिरुपोऽसि स्वयं विष्णुर्न संशयः।

हरिपालनकर्ता है और देवी पालनकत्री। दूसरी ओर सिंह रजोगुणी है तथा देवी सत्त्वगुणी। देवी मूर्ति का रहस्य है

– रजोगुण सत्त्वगुण का अनुगत होकर परम कल्याणकारी होता है।

नानालंकारभूषिता – देवी श्रीमयी या ऐश्वर्यमयी हैं, किन्तु वस्तुत: उनका आभुषण है – क्षमा, दया, स्नेह, मातृप्रेम इत्यादि।

चतुर्भुजा – देवी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चतुर्वर्ग प्रदायिनी हैं। वे सभी को चारों हाथों से भावपूर्ण चतुवर्ग फल प्रदान करती हैं। साथ ही चतुर्भुजों के माध्यम से वे चारों युगों को भी धारण करती हैं।

महादेवी – देव शब्द का अर्थ द्योतनशील अर्थात् स्वभाव प्रकाशित करना है। विश्वब्रह्माण्ड की सकल वस्तु उन्हीं महाशक्ति से प्रकाशित होती है तथा वे स्वत: प्रकाश हैं। अतैव वे सर्वदेवदेवियों में श्रेष्ठ महादेवी हैं।

नागयज्ञोपवीतिनी – वे नागरूपी यज्ञोवपीत धारण करती हैं। क्योंकि वे परब्रह्म स्वरूपिणी हैं। नाग कुलकुण्डलिनी एवं योग का प्रतीक है। माँ योगेश्वरी हैं। नाग शिव का चिह्न है तथा देवी शिवानी हैं। ध्यान में अन्यत्र उन्हें भवगेहिनीम् कहा गया है तथा भवसुन्दरी भी कह कर उन्हें शिवसंयुक्त तथा शिवप्रिया बताया गया है। ठाकुरजी कहते हैं – 'ब्रह्म और शक्ति अभेद है'। इसलिए वे एकत्र रूप से 'शवाकारे शक्ति रूपे' हैं। शवाकारा अर्थात् निष्क्रिय निर्गुण शिव। पुन: वे शक्तिस्वरूपा सगुण-साकारा लीलामयी हमलोगों की माँ हैं।

देवी शंखचक्रधनुर्बाण धारिणी अर्थात् महाशक्तिसम्पन्ना हैं। शंख की तरह माँ भी एक ओर मंगलमयी हैं, तो दूसरी ओर रणवाद्य के रूप में रणमयी। भीषण व मधुर, इन विपरीत भावों की अद्‌भुत समन्वय हैं माँ।

शास्त्रों में कहा गया है कि जहाँ विरुद्ध धर्म का योग एकत्र हो, वही ईश्वर है – '**यत्र विरुद्धधर्मयो: समावेश: स भगवान।**' चक्र गतिशीलता का प्रतीक है। शास्त्रानुसार प्रणव का प्रतीक धनुष है – 'प्रणवो धनु:'। अर्थात् देवी साक्षात् प्रणव स्वरूपिणी हैं। पंचबाण क्रमानुसार पंच प्राण, पंचभूत, पंच ज्ञानेन्द्रिय व पंच-कर्मेन्द्रिय का प्रतीक है।

देवी के रक्तवस्त्र रजोगुण के द्योतक हैं। देवी का वर्ण प्रात:काल में उदीत होनेवाले बाल रवि के समान लाल है। अर्थात् बाल अरुण के समान स्निग्ध प्रभा जो हमलोगों के लिए नयनाभिराम व हृदि-नन्दन है। नारदादि उच्च अधिकारी मुनीगण सदैव देवी की आराधना में रत रहते हैं।

त्रिवलीवलयोपेतनाभिनालमृणालिनीं – देवी का मृणाल अर्थात् पद्म सदृश नाभी तीन वलय युक्त है। जो क्रमानुसार सृष्टि, स्थिति व संहार, इन तीन अवस्थाओं तथा अतीत, वर्तमान व भविष्य का प्रतीक है। काल देवी के अंगों की शोभा है अर्थात् सदैव देवी के साथ संयुक्त है।

रत्नद्वीप अर्थात् हृदय, जहाँ प्रस्फुटित कमल पर अर्थात् साधक के हृदय कमल पर देवी सम्यक् रूप से स्थित हैं। ज्ञानसूर्य के उदय होने पर, साधक का हृदय-पद्म प्रस्फुटित होने पर वह माँ का नित्य विराजमान होना अनुभव कर चित्ररूपी पुष्पार्घ्य अर्पण करेगा। यही उसकी पूजा की सार्थकता है। ○○○

पृष्ठ ४८८ का शेष भाग

जनि रोव तिवही बियोग से बालक हउवें हमार।।

इस उपलक्ष्य में तीन दिन तक कठिन व्रत, उपवास, पूजा, मंगल गीत आदि के साथ चलनेवाले इस व्रत का समापन प्रात:कालीन उदित सूर्यदेव के अर्घ्य-समर्पण से होता है। इस व्रत में सन्ध्या और सुबह; दोनों समय सूर्यार्घ्य दिया जाता है। अस्त और उदित सूर्य की; दोनों अवस्थाओं में उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त की जाती है।

छठ का पर्व हमें लोक-व्यवहार, लोकाचार, प्रकृति और चराचर जगत के प्रति आभार प्रकट करते हुये, सबको यथायोग्य सम्मान देते हुये इन सबसे परे लोकातीत एक ज्योतिर्मय परमात्मा की आराधना करने का संदेश देता है। हम कहीं केवल लोक-सम्बन्धों में लोकाचारों में ही सीमित न रह जायें, इन सबके अतीत, सबका प्रेरक और प्रकाशक परम ज्योतिर्मय जो परमात्मा है, उसको न भूल जायें, इसलिये सबसे अन्त में उदित सूर्य की आराधना के साथ यह पर्व समाप्त होता है। लोकसंस्कृति, लोकाचार और लोकव्यवहार हमारे आध्यात्मिक जीवन में सहायता करने और उस ओर प्रेरित करने के लिये हैं। हम केवल उनके बाह्य ऐश्वर्य और मनोरंजन तक ही सीमित न रहें, उसमें निहित आध्यात्मिकता को अपनायें और सर्वव्यापी परमात्मा की ओर सहज रूप से अग्रसर हों। ○○○

मन्दिर शताब्दी विशेष

भगवन्निवासो मन्दिरम्

डॉ. सत्येन्दु शर्मा

सहा. प्राध्यापक, शा.दू.ब.महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर

(इस वर्ष २०२४ में स्वामी विवेकानन्द और स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज की बेलूड़ मठ स्थित मन्दिर स्थापना की शताब्दी के उपलक्ष्य में मन्दिरों से सम्बन्धित आलेख-शृंखला प्रकाशित की जा रही है।)

भगवान् जहाँ शयन करते हैं या जहाँ उनकी स्तुति की जाती है, उसे मन्दिर कहते हैं – **मन्द्यते सुप्यते अत्र मन्द्यते स्तूयते इति वा।**[१] वास्तव में भगवान् के निवास-स्थान का नाम है – मन्दिर। जब उनकी प्रतिमा स्थापित कर विधिपूर्वक प्राण-प्रतिष्ठा कर दी जाती है, उसके पश्चात् वह मात्र प्रतिमा नहीं रह जाती, बल्कि वह भगवान् का चिन्मय रूप हो जाता है। साकार भगवान् की उपासना करनेवाले भक्तगण मन्दिर में भगवान् के सम्मुख जाकर प्रार्थना करते हैं, उनका गुण-कीर्तन करते हैं, अपनी याचनाएँ रखते हैं और प्रभु का यथोचित अनुग्रह प्राप्त करते हैं।

निराकार उपासक भगवान् का कोई आकार और रूप-गुण नहीं मानते। उनके मत में नाम-रूप-रहित भगवान् सर्वत्र विराजमान हैं। भगवान् की सर्वव्यापकता में विश्वास तो सगुण-साकार उपासकों का भी होता है, लेकिन उनके मत में भक्तों के प्रेम में द्रवीभूत होकर भगवान् सशरीर प्रकट होते हैं और मनुष्य की तरह सम्भाषण आदि समस्त प्रकार की चेष्टाएँ करते हैं –

प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।[२]

यों तो भगवान् सर्वत्र विद्यमान हैं और अनन्य भक्त प्रेम से जहाँ भी उन्हें पुकारें वे प्रकट भी हो जाते हैं, लेकिन सामान्य जनों के लिए उनके उपासना-स्थल के रूप में भारतीय ऋषि-मुनियों ने मन्दिरों की प्रतिष्ठा की परम्परा का श्रीगणेश किया। इस प्रकार सगुण उपासकों के लिए भगवान के निवास-स्थान रूपी मन्दिरों का निर्माण-कार्य प्रचलित हुआ, जहाँ जाकर भक्तगण भगवान से यथारुचि अर्चन-पूजन-प्रार्थना आदि के द्वारा सम्पर्क स्थापित करते हैं।

मन्दिरों में भगवान् के निवास पर तथाकथित प्रत्यक्षवादी नास्तिकों को अविश्वास हो सकता है। उनके मत में यह केवल कल्पना, तथ्यहीन श्रद्धा और मिथ्या धारणा हो सकती है। किन्तु हमारे भारतीय सन्त-परम्परा ने अपनी अनुभूतियों से इसे सत्य प्रमाणित कर दिखाया है कि मन्दिर भगवान् का निवास है और वहाँ उनसे साक्षात्कार होता है। मन्दिरों में भगवत्-साक्षात्कार करने वाले कतिपय सन्त-भक्तों के उल्लेख यहाँ दर्शनीय हैं –

नरसिंह मेहता – पन्द्रहवीं शताब्दी के नरसिंह मेहता प्रख्यात भक्त हुए हैं। बचपन में ही माता-पिता के निधनवशात् बड़े भाई वंशीधर उनका पालन-पोषण कर रहे थे। सदा भगवद्भक्ति, भजन-कीर्तन और साधु-संग में लीन रहनेवाले नरसिंहजी पर बड़े भाई का स्नेह तो था, पर भाभी अक्सर उन्हें कुछ न करने के ताने मारा करती थी। एक दिन भाभी की बहुत कड़वी बातें सुनकर नरसिंहजी घर छोड़कर चल पड़े। सायंकाल तक गोपेश्वर शिव-मन्दिर पहुँचकर वहीं आसन टिकाया और महादेव की आराधना में तल्लीन हो गये। बिना खाये-पीये सप्ताह भर ध्यानस्थ आत्म-समर्पित भक्त को देखकर आशुतोष महादेव का चित्त पिघल पड़ा। साक्षात् प्रकट होकर उन्होंने नरसिंहजी को दुलारा और साथ लेकर भगवान् द्वारकाधीश के यहाँ जा पहुँचे। महादेव द्वारा सौंपे गये नरसिंह पर भगवान् श्रीकृष्ण द्रवित हो उठे। उन्हें अपने प्रासाद में रखा, महारास देखने का सौभाग्य दिया और अपना पीताम्बर, करताल और प्रतिमा देकर लोक-संग्रह के निमित्त विदा किया।

जूनागढ़ लौटकर नरसिंहजी अपना सारा सांसारिक दायित्व अपने आराध्य श्रीकृष्ण को सौंपकर अहर्निश भजन-कीर्तन में रम गये। 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' के वचनदाता प्रभु श्रीकृष्ण ने उनका सारा भार सम्भाल लिया था। जब जैसी जरूरत आई, उसका निराकरण किया। एक बार कठिन परीक्षा की घड़ी तब आई, जब जूनागढ़ के राजा माण्डलीक ने नरसिंहजी के सामने शर्त रख दी कि वह भगवान् कृष्ण को अपने हाथों सायंकाल में माला पहनाकर मन्दिर को

ताले से बन्दकर चाबी अपने पास रखेगा और सुबह तक वही माला यदि भगवान् कृष्ण उसके गले में डाल देंगे, तब माना जायेगा कि वह प्रभु का सच्चा भक्त है, अन्यथा उसे प्राणदण्ड दिया जाएगा।

नरसिंहजी ने राजा की शर्त स्वीकार कर ली। राजा ने मन्दिर में जाकर श्रीकृष्ण को माल्यार्पण किया, मन्दिर के दरवाजे में ताला लगवाकर चला गया। नरसिंहजी निरन्तर श्रीकृष्ण के भजन गाने में भावमग्न रहे। प्रात: जब राजा आया, भगवान् के गले की माला नरसिंह जी के गले में पड़ी थी।[३]

इस चमत्कार की घटना से नरसिंहजी की प्रसिद्धि सुगन्ध समान चतुर्दिक व्याप्त हो गई। इस तरह भगवान् ने भगवद्भक्ति की महिमा के साथ-साथ संसार को यह भी दिखला दिया कि मन्दिर में केवल मूर्ति नहीं, साक्षात् भगवान् निवास करते हैं।

चैतन्य महाप्रभु – विश्वविख्यात वैष्णव भक्त चैतन्य महाप्रभु का जन्म १५वीं शताब्दी में पश्चिम बंगाल के नवद्वीप में हुआ। आरम्भिक जीवन में वे इतने चंचल थे कि कभी वैष्णवों को देखकर पूछते हुए तंग करते कि 'वैष्णवता किसे कहते हैं'[४] – कभी श्रीधर नामक भक्त दुकानदार से पुष्पमाला देने के लिये छेड़ते हुए कहते कि 'सबसे बड़े देवता तो हमीं हैं। हम से बढ़कर देवता और कौन हो सकता है ! गंगाजी तो हमारे चरणों का धोवन है।'[५] कभी पं. श्रीवास के भक्ति-भाव सीखने के परामर्श के उत्तर में बोलते कि 'अभी थोड़े दिन और इसी तरह मौज कर लेने दो, फिर इकट्ठे ही वैष्णव बनेंगे और ऐसे वैष्णव बनेंगे कि वैष्णवों की तो बात ही क्या है, साक्षात् विष्णु भी हमारे पास आया करेंगे।'[६]

किन्तु कालान्तर में उनकी यह चंचल प्रकृति परिवर्तित हुई। एक बार वे अपने मौसा, कुछ स्नेही-जनों तथा विद्यार्थियों के साथ गया धाम की यात्रा पर निकले। वहाँ पिता का श्राद्ध-कार्य सम्पन्न करने के बाद वे सबके साथ दर्शनार्थ विष्णुपद मन्दिर गये। वहाँ भगवान की प्रतिमा देखते-देखते उन्हें भगवान् के चिन्मय रूप के दर्शन हो गये, जिस अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति में वे अचेत होकर गिरने लगे, तभी किसी संन्यासी ने उन्हें संभाल लिया। चेतना आने पर महाप्रभु ने उस संन्यासी श्रीईश्वरपुरी से वहीं दीक्षा प्राप्त की और श्रीकृष्ण का नाम-जप करते हुए भगवत् प्रेम में सुध-बुध खोने लगे। कभी भावोन्माद में जोर-जोर से रोने लगते, कभी जोर-जोर से हँसने लगते और कभी नृत्य करने लगते। इस तरह भगवान् विष्णुपद ने मन्दिर में उन्हें अपना चिन्मय रूप दिखाकर जीवन और जीवनचर्या धन्य कर दी।

एकनाथ – सोलहवीं शताब्दी में आविर्भूत महाराष्ट्र के सुविख्यात सन्त एकनाथजी बाल्यावस्था से ही भगवद्भजनानन्दी थे। वे १२ वर्ष की अवस्था में ही गुरु की खोज के लिये अत्यन्त व्याकुल रहने लगे। अन्तर्यामी प्रभु तो अपने भक्तों का पल-पल ध्यान रखते हैं। एक दिन एकनाथजी शिवालय में बैठे भगवान् के सुमिरन-भजन में निरत थे, तभी उन्हें आकाशवाणी सुनाई पड़ी – ''जाओ देवगढ़, वहाँ तुम्हें जनार्दन पंत के दर्शन होंगे, जिनसे तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा।''[७]

एकनाथजी देवगढ़ के लिये निकल पड़े। दो दिनों की यात्रा के बाद तीसरे दिन पहुँचे और जनार्दन पंत के दर्शन कर उनके चरणों का आश्रय लेकर निरन्तर छह वर्षों तक सेवा की। जनार्दन पंत ने उन्हें दीक्षा दी और गुरु के आशीर्वाद से उन्हें भगवद्-दर्शन लाभ हुआ। फिर तो एकनाथजी का सम्पूर्ण जीवन भगवद्भक्ति के रस में व्यतीत होकर जगत् में सदा के लिए अनुपम आदर्श बन गया। इस तरह मन्दिर-वासी भगवान् शिव ने भक्त एकनाथ के लिये आकाशवाणी द्वारा गुरु का नाम-पता बताकर उनका मार्ग प्रशस्त किया।

श्रीरामकृष्ण परमहंस – उन्नीसवीं सदी में प्रादुर्भूत श्रीरामकृष्ण देव को जन्मत: भगवद्भक्ति प्राप्त थी। भगवान् के भजन-पूजन में उनकी स्वाभाविक अनुरक्ति दिखलाई पड़ती थी। लेकिन अग्रज रामकुमार के पास जब वे कलकत्ता गये और दक्षिणेश्वर मन्दिर में पुजारी नियुक्त हुए, उसके बाद तो मानों उनकी भक्ति को दैवी पंख लग गये। घण्टों माँ काली की पूजा करते, माँ से दर्शन देने की प्रार्थना करते और माँ के ही ध्यान में डूबे रहते। धीरे-धीरे उनके चित्त की व्याकुलता बढ़ती चली गयी और फिर एक दिन भावोन्माद में मन्दिर में टंगे खड्ग को लेकर बोलने लगे – 'माँ आपके दर्शन बिना इस जीवन का क्या मतलब?' इतना बोलकर वे खड्ग से इहलीला समाप्त करने ही वाले थे कि दयामयी माँ काली प्रकट हो गयीं। श्रीरामकृष्ण देव माँ के दर्शन से धन्य हो गये। और फिर उसके पश्चात् तो

माँ के साथ दर्शन, संभाषण आदि का क्रम उनके जीवन में अनवरत चलता रहा।

श्रीरामकृष्ण देव का स्पष्ट मत था – मन्दिर में साक्षात् भगवान् का वास होता है और अपने इस मत को उन्होंने स्वयं की अनुभूति में घटित कर दिखाया।

वामा खेपा – उन्नीसवीं सदी के अद्‌भुत भक्त वामा खेपा माँ तारा के उपासक थे। कभी वे तारापीठ के श्मशान में बैठकर माँ का ध्यान, मंत्र-जाप करते थे या कभी मन्दिर में माँ के सामने बैठे रहते थे। माँ से उनका सम्बन्ध एक मुँहलगे बच्चे के समान था। एक दिन माँ के भोग लगाने से पहले ही वामा ने भोग ग्रहण कर लिया। भोग जूठा करने से मन्दिर के पुजारियों ने क्रोध में आकर उन्हें मार-पीट कर वहाँ से भगा दिया।

रात में नटोर की महारानी को माँ तारा ने सपने में दर्शन देकर कहा कि मेरा बेटा वामा भूखा है और मुझे भोग लगाया जा रहा है। यह मैं सहन नहीं कर सकती। मैं यह स्थान छोड़कर कहीं और चली जाऊँगी।

अगले दिन रानी ने पुजारियों से सारी घटना सुनने के बाद कहा कि वामा को बुलाकर भोजन कराया जाये और आज से उन्हें भोजन कराने के बाद ही माँ को भोग दिया जाये। फिर पुजारियों ने खोजकर और बुलाकर बड़े आदर से वामा को भोजन कराया और उस दिन से उनके भोजन के पश्चात् ही माँ को भोग देना आरम्भ हुआ। इस तरह माँ तारा ने दिखला दिया कि वहाँ मन्दिर में केवल मूर्ति नहीं, वे स्वयं विराजमान हैं, जो भोग भी स्वीकार करती हैं और भक्तों के भाव-अनुरूप यथोचित व्यवहार भी करती हैं।

काशी की साध्वी माताजी – बंगाल की अशिक्षित भक्तमती एक माताजी काशी में रहती थीं। प्रात: भगवान् काशी विश्वनाथ और माँ अन्नपूर्णा का दर्शन-पूजन उनका दैनिक व्रत था। इसके बाद उनका शेष समय घर में भगवान् के नाम-जप, ध्यान में व्यतीत होता था। उनकी भक्ति इस पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी कि भगवान् के अखण्ड स्मरण के कारण उनके शरीर पर देवी-देवताओं के चित्र और अनेक मन्त्र उभर जाते थे, जो घण्टों तक समुत्सुक लोगों के लिए दर्शनीय होते थे।

एक दिन माताजी अन्य दिनों की तरह माँ अन्नपूर्णा के मन्दिर गईं। वहाँ प्रणामादि के क्रम में उनकी दृष्टि माँ के गले में लटके हार पर पड़ी। माँ के गले का उज्ज्वल हार उन्हें अत्यन्त सुन्दर लगा। तभी माँ अन्नपूर्णा ने अपने गले का हार निकाल कर अपना हाथ माताजी की ओर बढ़ा दिया। यह दृश्य देखकर माताजी अतिशय चकित हो उठीं। उन्हें मानों स्वयं की आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। उन्होंने मन्दिर में इधर-उधर दृष्टि घुमाई, पर संयोगवश उस समय दूसरा कोई व्यक्ति नहीं था। माताजी ने फिर माँ अन्नपूर्णा की ओर देखा। माँ अन्नपूर्णा ने मुस्कुराते हुए फिर एक बार अपने हाथ में लिया हार बढ़ाते हुए कहा – 'ले लो।' माताजी ने माता के हाथ से हार ले लिया और लौटकर घर आ गईं। माताजी को कण्ठ-हार देकर माँ अन्नपूर्णा ने संसार को बता दिया कि मन्दिर में विराजमान मूर्ति चिन्मय है, जो इच्छानुसार मानवोचित व्यवहार भी करती है।

उक्त विलक्षण भगवद्भक्तों के अतिरिक्त अब कुछ सामान्य भक्तों से सुने हुए मन्दिर में घटित वृत्तान्त प्रस्तुत हैं –

१. रायपुर से लगभग २० किलोमीटर दूर नवागाँव में श्रीविश्वनाथ मन्दिर है। वहाँ एक दिन दक्षिण भारत की रहनेवाली एक महिला भक्त आईं। शिवलिंग-पूजन एवं अन्य देवी-देवताओं के पूजन के बाद उन्होंने मन्दिर के साधक-प्रबन्धक जी से अनुरोध किया – 'मैं बहुत दूर से यहाँ दर्शन करने आई हूँ। माता त्रिपुरसुन्दरी की भक्त हूँ। इसलिये यदि आप माता राजराजेश्वरी का प्रसाद स्वरूप कुछ देते, तो बड़ा आनन्द होता।' प्रबन्धक जी ने कहा कि 'आप माँ की भक्त हैं, तो माँ से स्वयं प्रसाद माँग लीजिये। वे जो उचित समझेंगी, दे देंगी।' यह सुनकर महिला भक्त ने माँ के विग्रह के सामने जाकर आँचल फैलाकर कुछ प्रसाद देने की प्रार्थना की। तभी चमत्कार हुआ। माँ के गले में पड़ी स्फटिक की माला से एक दाना नीचे गिर पड़ा। अग्रवालजी ने वह स्फटिक का दाना महिला भक्त को दे दिया। बाद में जाँच करने पर पता चला कि माँ के गले की स्फटिक माला न कहीं से टूटी थी, न उसमें एक भी स्फटिक कम था।

२. एक देवी भक्त महामाया के मन्दिर प्रतिदिन दर्शनार्थ जाया करते थे। उन्हें समय-समय पर बहुत पीड़ादायक सिर-दर्द होता था। नगर के अनेक चिकित्सकों से उपचार करवा लिया था, पर कोई लाभ नहीं मिला। रोज की तरह जब वे सन्ध्या समय माँ महामाया-मन्दिर पहुँचे और आँखें बन्दकर

शेष भाग पृष्ठ ५१९ पर

छोटा वैज्ञानिक आर्यन

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, १४ नवम्बर को बाल दिवस के रूप में मनाया जाता है। इसी कड़ी में राष्ट्रीय बाल पुरस्कार २०२४ में कोटा (राजस्थान) के आर्यन सिंह का नाम सम्मिलित किया गया है, जिसने कृषि कार्य हेतु आविष्कार कर एक क्रान्ति ला दिया। आइये, आर्यन के खोज और संघर्ष के विषय में जानते हैं।

आर्यन सामान्य मध्यवर्गीय परिवार से आता है। पिता जितेन्द्र सिंह ई-मित्र व जेरॉक्स (फोटो कापी) की दुकान चलाते हैं और माँ मनसा देवी गृहिणी हैं। बहन राशि अभी पढ़ाई कर रही है। आर्यन सिंह ने अपनी विद्यालयीन शिक्षा २००३ में पूरी की और अब बी.टेक. के लिए बूंदी शासकीय इंजीनियरिंग महाविद्यालय में प्रवेश लिया है। वह कम्प्यूटर साइन्स से बी.टेक. कर रहा है।

कोटा शहर के बेटे आर्यन सिंह को राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू ने राष्ट्रीय बाल शक्ति पुरस्कार २०२४ देकर सम्मानित किया है। आर्यन सिंह भारत का पहला ऐसा कम वर्ष का बालक है, जिसने कृषि के क्षेत्र में एग्रोबोट (रोबोट) की खोज कर कृषि कार्य में मदद कि है।

आर्यन का दावा है कि उसका रोबोट किसानों के लिए बहुत सहायक है। यह रोबोट उबड़-खाबड़ जमीन पर भी चल सकता है। बीज बोने से फसल काटने तक में सहायक है। इसकी मदद से फसलों के पौधों की गणना और उनकी स्थिति के विषय में भी जान सकते हैं। कितने पौधे खराब हैं और शेष किस स्थिति में हैं? यह जानकारी भी आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस बेस पर उपलब्ध कराता है। खराब व बेकार पौधों को अलग तरह के रंग देने के लिए उस पर तुरन्त स्प्रे कर दिया जाता है, ताकि जब खेत में जाये तो उन पौधों को तुरन्त उखाड़ कर अलग किया जा सके।

एक किसान परिवार से आने के कारण उन्होंने दसवीं कक्षा के दौरान किसानों के सामने आने वाली चुनौतियों को कम करने की इच्छा से प्रेरित होकर एग्रोबोट के विचार की कल्पना की, अन्यथा कई किसान तो चुनौतियों का सामना करते हुए जीवन से हार मान लेते थे। एग्रोबोट पूरी तरह से सौर ऊर्जा पर काम करता है, जिसे एक पीजो इलेक्ट्रिक पैनल की तरफ से मदद मिलती है, टायरों के दबाव से बिजली पैदा होती है। इसे रात के समय उपयोग के लिए बैट्रियों से संग्रहित किया जाता है। यह एक आत्मनिर्भर प्रणाली है। जिसमें छोटे किसानों को भी मदद मिलेगी।

आर्यन को कई अन्तर्राष्ट्रीय और भारतीय अवार्ड मिल चुके हैं। इसमें यंग साइंटिस्ट ऑफ इंडिया अवार्ड २०२०, रशियन यंग इनोवेटर अवार्ड २०२१ सम्मिलित हैं।

स्वामीजी कहते हैं, ''अपने में विश्वास करो। दृढ़ विश्वास से महान कार्य होते हैं।''

आर्यन सिंह ने बताया कि उनके दादा उत्तर प्रदेश के गोरखपुर में छोटी-सी खेती करते थे। ट्रेक्टर और अन्य मशीनें खरीदने के लिए उनके पास पैसे नहीं थे। आर्यन ने बताया कि तब उसने सोचा था कि वह बड़ा होकर किसानों के लिए सस्ता उपकरण तैयार करेगा।

तो बच्चो, आप सबमें कुछ करने की विद्या समाहित है। केवल आवश्यक है उस विद्या को निखारने की। स्वयं पर विश्वास करके अगर हम दृढ़ होकर अपने कार्य को ईमानदारी से करते जायें, तो सफलता हमें अवश्य ही मिलेगी। अपने अनवरत प्रयास और लगन से हम एक दिन अवश्य अपने सपने को पूरा कर सकते हैं। ○○○

रामगीता (२/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

अभिमान है, उसकी स्वीकृति बाध्यता है, अनिवार्य है। पर हाँ, उसमें अन्तर है। उस अन्तर को स्पष्ट करने के लिए एक शब्द आपने बार-बार सुना होगा। वह शब्द है 'त्रिगुण'। त्रिगुण माने सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। पर गुण शब्द का प्रयोग क्यों किया गया? रस्सी को संस्कृत में गुण कहा जाता है। उसकी भी व्याख्या गुण कहकर की जाती है। यह गुण की व्याख्या है। गाँव में जो लोग रस्सी बनाते हैं, जब उन्हें लगता है कि पशु कहीं उसे तोड़ न दे और कुँए से अगर जल निकालना है, पात्र बड़ा हो, जल अधिक हो, तो रस्सी टूट न जाय, इसलिये उस रस्सी को तिहरी करके, तीन रस्सी को एक साथ बटकर उसको मजबूती दी जाती है। जब रस्सी तिहरी होती है, तब टूटने का डर नहीं रहता। तो यह जो माया है, उसके लिए कहा गया, तिहरी रस्सीवाली त्रिगुणात्मिका। यह जो त्रिगुणात्मिका है, इसका अर्थ है कि रस्सी इतनी मजबूत बन गई, बन्धन ऐसा मजबूत हो गया, जिसे तोड़ पाना सरल नहीं है। तिहरेपन के उस बन्धन से छूटना बहुत कठिन है। अब रामायण में उससे छूटने का एक क्रमिक संकेत है। उसकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट कर दें।

उसके समापन को समझने के लिए रामायण में एक क्रम है और उस क्रम को जोड़ा गया धनुष से। भगवान श्रीराम के करकमलों में धनुष है और उस धनुष में प्रत्यंचा है। प्रत्यंचा रस्सी है। अब उसको प्रत्यंचा कहिए, चाहे गुण कहिए। प्रत्यंचा माने जिस रस्सी के द्वारा धनुष के दोनों छोर को बाँधा जाता है। धनुष यों तो सीधा दिखाई देता है, पर बाण चलाने के लिए उसे झुकाना पड़ता है। जब लक्ष्यवेध करने चलेंगे, तो धनुष को झुकाने के लिए दोनों किनारों को बाँधना होगा। दोनों किनारों को बाँधनेवाली वस्तु को आप चाहे गुण कहिए, चाहे प्रत्यंचा कहिए। भगवान राम का यह जो धनुष है, इसका, इस धनुष के प्रतीक का उपनिषदों में, पुराणों में और भगवान राम के स्वरूप में बहुत महत्त्व है। भगवान राम धनुष धारण करते हैं। वह धनुष त्रिगुणमय है। त्रिगुण को मिलाकर जैसे तिहरी रस्सी बनाई जाती है, वह धनुष की प्रत्यंचा बन गई। वह प्रत्यंचा युक्त धनुष उनके कंधों पर है। अब उसका क्रम आप मैं और मेरेपन के सन्दर्भ में, गुण के सन्दर्भ में देखेंगे। पहला सूत्र है कि अन्त में हमको गुण का आभास हो रहा है। मैं और मेरापन जब तक है, तब तक गुण का कोई सदुपयोग है कि नहीं? तब उसका सूत्र आपको मिलेगा।

महर्षि विश्वामित्र भगवान श्रीराम को लेकर अपने आश्रम की ओर जा रहे हैं। आश्रम में महर्षि एक यज्ञ करते हैं। वह यज्ञ क्या है? विनयपत्रिका में गोस्वामीजी ने एक पद लिखा, वह पद यदि आप पढ़े, तो आपको मिलेगा। गोस्वामीजी ने कहा, प्रभु, विश्वामित्र यज्ञ करना चाहते थे, पर वह यज्ञ पूरा नहीं होता, तो मैं भी वह यज्ञ करना चाहता हूँ, पर पूरा नहीं हो रहा है। प्रभु ने पूछा, तुम कौन-सा यज्ञ करना चाहते हो। गोस्वामीजी ने कहा –

पद-राग-जाग चहौं कौसिक ज्यों कियो हौं।

आपके चरणों में राम रूप जो यज्ञ है, उस पद-रागयज्ञ को मैं करना चाहता हूँ। पर एक समस्या है। क्या?

कलि-मल खल देखि भारी भीति भियो हौं।।

विनय १८१/३

मैं मारिच, सुबाहु और ताड़का के द्वारा भयभीत होने के कारण आपके चरणों में अनुराग का यज्ञ नहीं कर पा रहा हूँ। विश्वामित्रजी महान से महान ऋषि हैं, मन्त्रद्रष्टा हैं,

गायत्री मन्त्र जैसे महान मंत्र के ऋषि भी वे ही हैं। उन्होंने अपने पौरुष से, अपनी तपस्या से, साधना से इतनी बड़ी क्षमता प्राप्त कर ली है कि उन्हें राजर्षि के स्थान पर ब्रह्मर्षि की उपाधि प्रदान की गई। लेकिन उन्हें ऐसा अनुभव होता है कि जीवन की परिपूर्णता भगवान की भक्ति में है, राग में है। जब तक पद-राग, भक्ति-राग का जीवन में उदय नहीं होगा, तब तक जीवन में ताड़का, मारीच और सुबाहु का जो कष्ट है, वह मिट नहीं सकता।

सबसे पहले ताड़का आती है। यहाँ गुण का सदुपयोग देखेंगे। धनुष और बाण का उद्देश्य क्या है? लक्ष्य क्या है और उस लक्ष्य की पूर्ति में बाधा क्या है? गोस्वामीजी कहते हैं, प्रभु विश्वामित्रजी जैसा मैं भी पद-राग-यज्ञ करना चाहता हूँ, किन्तु उसमें बाधा है। क्या? बोले। ताड़का आ जाती है। ताड़का वह है, जो यज्ञ को नष्ट कर देती है। उसके पुत्र यज्ञ को नष्ट कर देते हैं। साधारणत: जब कोई यज्ञ करता है, तो उस यज्ञ में मारीच, सुबाहु और ताड़का नहीं दिखाई देते। बहुत से लोग तो यज्ञ में इन्हीं तीनों की पूजा ही करते हैं। रावण भी तो अन्तत: यज्ञ करता है। उसका यज्ञ भी तो बड़ा चामत्कारिक है। पर जो 'पद-राग-जाग' है, उसमें ताड़का सामने आ जाती है। तब भगवान राम ने महर्षि विश्वामित्र से पूछा, यह कौन है? भगवान जानते हैं, वे अन्तर्यामी हैं। पर इसका अभिप्राय है कि क्या आप चाहते हैं कि इसका नाश हो? प्रभु ने पूछा कि ब्रह्मर्षि ये कौन हैं? विश्वामित्रजी ने कहा, यह ताड़का है। तुम इसका वध करो। भगवान राम का जो धनुष है, उसके दो पक्ष हैं। वह पक्ष क्या है? एक है मैं और दूसरा है मेरा। मैं और मेरेपन के बीच में प्रत्यंचा है। उसका उद्देश्य क्या है। मार डालना तो द्वेष है, ईर्ष्या है। आपको किसी ने अपमानित किया, कष्ट दिया, आपने उसको मार डाला। ऐसा दिखाई देता है कि ताड़का को श्रीराम ने मार डाला। लेकिन एक वाक्य में गोस्वामीजी इसे आध्यात्मिक रूप प्रदान कर देते हैं।

चले जात मुनि दीन्हि देखाई।

सुनि ताड़का क्रोध करि धाई।। १/२०८/५

क्रोध कब आता है? श्रद्धेय स्वामीजी ने फ्रायड की बात स्मरण करायी थी। काम को उसने मूल में बताया। काम की व्यापकता का वर्णन महाभारत की कामगीता में किया गया है। आपने अन्य गीताओं का नाम सुना होगा, पर महाभारत में एक कामगीता भी है। विचित्र बात है कि उस कामगीता के रहस्य का वर्णन भी भगवान कृष्ण ने युधिष्ठिर से किया। अर्जुन को जो गीता सुनाई, वह स्वयं उनकी ज्ञानमयी गीता थी। पर युधिष्ठिर को जो गीता उन्होंने सुनाई, वह काम की गीता थी। उस काम की गीता में भगवान ने बड़ी विचित्र बात कही। अगर फ्रायड कहता है कि जितनी क्रियाएँ होती हैं, जितना व्यवहार होता है, उसके मूल में काम की वृत्ति है, तो लोग चौक पड़ते हैं। पर कामगीता में यह बात और भी अधिक गहराई से कही गई है। काम ने कहा कि ब्रह्मचारियों के ब्रह्मचर्य में, तपस्वियों की तपस्या में, सबके पीछे मैं ही तो हूँ। इसे पढ़कर तो कोई भी घबरा जायेगा। जब इतनी साधना, त्याग, तपस्या के बाद काम यह दावा करे कि सबके पीछे मैं हूँ, तो चिन्ता होती है। हमारे शास्त्रों की यह पद्धति रही है कि किसी बात का जब वे वर्णन करते हैं, तो उसको वे उस सीमा तक पहुँचा देते हैं और पहुँचाने के बाद उसे क्रमश: कैसे उसका विनाश, कैसे उसका शमन हो, यह उपाय भी बता देते हैं। इसका मूल तात्पर्य क्या है? कामगीता का मूल तात्पर्य यह नहीं है कि हम जितने ब्रह्मचारी, तपस्वी, संन्यासी हैं, उन्हें कामगीता के श्लोकों का उद्धरण देकर सुना दें कि यही तो आपकी दशा है। आप जो कुछ कर रहे हैं, उन सब के पीछे काम है। उद्धरणों के ऐसे उपयोग करनेवालों की भी कमी नहीं है। अच्छा हुआ कि इस गीता का बहुत प्रचार नहीं है। कोई-कोई पढ़ते हैं। लोग महाभारत पढ़ते तो हैं, पर विशेष रूप से शुद्ध प्रसंग पढ़ते हैं। शान्ति पर्व पढ़ने की इच्छा तो कम ही लोगों को होती है।

मुझे अपने गाँव का अनुभव है। एक सज्जन थे, उनके यहाँ नित्य महाभारत की कथा होती थी। पर श्रोताओं की संख्या घटते और बढ़ते देखकर आश्चर्य होता था। जब युद्ध का प्रसंग आता था, तब गाँव की बड़ी भारी भीड़ आती थी। जहाँ युद्ध समाप्त हुआ, शान्ति पर्व आया, भीड़ घटते-घटते दस-पाँच लोग ही रह जाते थे। जो बैठते थे, उसमें आधे सोते रहते थे। उसका कारण है कि युद्ध में तो सोने से काम नहीं चलेगा और शान्ति में तो सोकर ही उसका अनुभव करना चाहिए।

भगवान श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा कि युधिष्ठिर, तुमने युद्ध जीत लिया, किन्तु वही युद्ध सब कुछ नहीं है। अभी

एक युद्ध तुम्हें और जीतना है। जैसे आपको कोई पहले से सूचना दे दे। कई चोर ऐसे होते हैं, जो घर में अंधेरे में छुपकर बैठ जाते हैं। यदि आप सावधान होंगे, तो सोने से पहले आप कोनों में जाकर देख लेंगे। ऐसी घटनाएँ होती हैं। चोर घर में छिपकर बैठ गया और रात्रि के समय दरवाजा खोल दिया और अन्य चोरों को घुसने का मार्ग बना दिया। ऐसी स्थिति में यह जो वर्णन है, वह प्रत्येक को यह बताने के लिए है कि वह अपने आपको यह न मान ले कि मैं इतना काम से ऊपर उठ गया कि मेरी वृत्ति में कहीं दोष नहीं है, कहीं दूषण नहीं है। वह मानो यह संकेत करने के लिए है कि यह सब होते हुए भी, ऊँजाले घर में कहीं न कहीं अँधेरा होगा। अँधेरे में कोई छिप तो सकता ही है। ऐसी स्थिति में हमारे जो छिपे हुए शत्रु हैं, उनका नाश आवश्यक है। एक बाहर शत्रु है, दूसरा भीतर शत्रु है। एक गहराई से अंधकार में छिपा हुआ शत्रु है। काम कितना प्रबल है ! वह सबकी हँसी उड़ाता है कि कोई मुझे परास्त कर सकता है क्या, हरा सकता है क्या? क्या ये समझते हैं कि मैं हरा दिया? रामायण में भी यही सिद्धान्त है। गोस्वामीजी ने जिस तरह से काम का वर्णन किया, कई लोगों को लगता है कि यह तो कुछ अतिरेक है। इतना वर्णन करने की क्या आवश्यकता थी? इतना कह देते कि काम गया, शंकरजी पर आक्रमण किया और शंकरजी ने उसे जला दिया और उसके बाद वरदान दिया और विवाह हुआ। आप पढ़ेंगे, वह भी एक काम गीता ही है। अगर उस पर आप विचार करके देखें, तो वह काम की महिमा का प्रसंग इसलिए है कि साधक के जीवन में सावधानी आ जाये।

जब काम आक्रमण करने के लिए चलता है, तब रामायण में दो घड़ी का संकेत है। एक बार भगवान ने दो घड़ी में सारे ब्रह्माण्ड का दर्शन अपने भक्त कागभुशुण्डि को कराया। जो कुछ अदृश्य था, जिसे जान पाना सरल नहीं है, उसे बोध कराया। उन्होंने कहा –

उभय घरी महँ मैं सब देखा। ७/८१/८

गरुड़जी ने पूछा कि आपको भगवान ने अपने उदर में करोड़ों ब्रह्माण्ड का दर्शन कराया, तो कितना समय लगा? केवल दो घड़ी में। काम ने जब आक्रमण किया, तो गोस्वामीजी ने कहा –

उभय घरी अस कौतुक भयऊ। १/८५/१

दो घड़ी राम की, दो घड़ी काम की और दोनों का चमत्कार अनोखा है। श्रीराम ने यह दिखाया कि मैं सर्वव्यापक हूँ। सब कुछ मुझमें ही है। काम ने यह दिखाया कि संसार में जो कुछ है, सब पर मेरा अधिकार है, सब पर मेरा प्रभाव है। उस पूरे वर्णन का तात्पर्य यही है। गोस्वामीजी ने कहा कि काम यह समझता है कि शंकरजी पर आक्रमण करने का फल यही होगा कि मेरा विनाश होगा। तो मरने के पहले थोड़ा अपना चमत्कार भी तो दिखा दें।

तब आपन प्रभाव बिस्तारा।

निज बस कीन्ह सकल संसारा।। १/८३/५

सारे संसार को उसने वशीभूत कर लिया। किसका नाम लिया? सारे सद्गुणों का नाम, जो काम गीता में है –

ब्रह्मचर्ज ब्रत संजम नाना।

धीरज धरम ग्यान बिग्याना।।

सदाचार जप जोग बिरागा।

सभय बिबेक कटकु सबु भागा।। १/८३/७-८

विवेक के जितने सैनिक थे, सद्गुण थे, वे सब काम के डर से भाग खड़े हुए। उसके पश्चात् सबसे बड़ा व्यंग्य कर दिया। जिन्होंने चिन्तन करके यह मान लिया था कि 'सर्वं खल्विंद ब्रह्म' – सब कुछ ब्रह्म है, उनकी दृष्टि परिवर्तित हो गई। गोस्वामीजी ने कठोर वाक्य लिखा। मैं जब दोनों की तुलना करता हूँ, तो लगता है कि सबसे कठोरतम वाक्य दोनों में ही है। गोस्वामीजी कहते हैं कि काम का आक्रमण होने के बाद, प्रकृति में परिवर्तन हो गया। कई लोगों को यह असंगत लगता है। गोस्वामीजी ने लिखा –

संगम करहिं तलाव तलाईं। १/८४/२

अन्त में कहते हैं कि वस्तुत: काम का जो आक्रमण था, उसका परिणाम किन पर हुआ?

देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे। ८४ छ.

– जो यह देखते थे कि सर्वत्र ब्रह्म है, उस ब्रह्म की विस्मृति हो गई और नारी-सौन्दर्य की स्मृति आ गई। मानो यह बताने के लिये कि श्रेष्ठ से श्रेष्ठ व्यक्ति भी यह दावा नहीं कर सकता कि उसके हृदय में कहीं विकृति नहीं छिपी हुई है। पर अन्त में उद्देश्य यह नहीं है कि हम लोगों को काम की महिमा सुनाकर काम की दिशा में प्रेरित करें। काम

शेष भाग पृष्ठ ५०४ पर

इच्छा छोड़ो, दिव्य हो जाओगे

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

प्रश्न – क्या केवल अपना विकास करना स्वार्थ नहीं है? स्वार्थ और नि:स्वार्थ को स्पष्ट करें।

उत्तर – यदि कोई अपनी आन्तरिक प्रकृति को जीतना चाहता है, तो वह भी नि:स्वार्थी कहा जायेगा। स्वार्थी वह है, जो कहता है कि अपने खाओ-पीओ, अपने मजे से रहो, अपने लिये धन कमाओ, अपना मकान ले लो आदि। जहाँ सबमें मैं और मेरी सुख-सुविधा की दृष्टि है, वह स्वार्थी है। पर ज्यों ही हम आन्तरिक प्रकृति को जीतना चाहते हैं, तब कहते हैं कि नहीं, मैं ऐसा नहीं करूँगा। मैं पहले दूसरे के लिए करूँगा, तब अपने लिए करूँगा। ऐसा व्यक्ति स्वार्थी नहीं है।

आत्मनियन्त्रण क्यों करें?

उत्तर – आत्मनियन्त्रण परमात्मा की अनुभूति के लिये करें, भौतिक वस्तु के लिये नहीं। जैसे तुम्हें लाखों रूपये का एक हीरे का टुकड़ा मिला। उस हीरे के टुकड़े से उसके बदले तुमने शेगाँव स्टेशन से दो कचौड़ी खरीद ली। भौतिक वस्तु के लिए आत्मनियन्त्रण वैसा ही है, मानो हीरे का टुकड़ा देकर स्टेशन की दो कचौड़ी खरीद लेना।

यह विश्व क्या भौतिक ही है?

उत्तर – विश्व केवल भौतिक वस्तु नहीं है। विश्व में छ: अरब से अधिक मनुष्य रहते हैं। वे सब भौतिक पदार्थ नहीं हैं। उनमें मन है, उनमें हृदय है। भौतिक पदार्थ, तो सूर्य-चन्द्रमा, मिट्टी-पत्थर ये सब हैं। विश्व केवल सूर्य, चन्द्रमा, मिट्टी-पत्थर नहीं है। मनुष्य हैं, अन्य प्राणी हैं, वे भौतिक नहीं हैं। उनमें चेतना है। निर्जीव वस्तु इच्छारहित है। निर्जीव वस्तु में इच्छा नहीं होती, वह निर्जीव की निर्जीव रह जाती है। मनुष्य सजीव है, उसमें इच्छाएँ हैं। जब वह इच्छाओं को छोड़ देगा, तो दिव्य हो जायेगा, डिवाइन हो जायेगा। निर्जीव वस्तु में इच्छा ही नहीं है, तो वह छोड़ेगी क्या? वह कैसे दिव्य बनेगी? उद्देश्य यह है कि मनुष्य में इच्छायें हैं, इच्छाओं को पूर्ण रूप से छोड़ने पर वह दिव्य बन जायेगा। निर्जीव वस्तु में इच्छायें नहीं हैं, इसलिए वह दीवार की दीवार ही रह जायेगी। किसी मनुष्य में आज भले ही पशुत्व है, किन्तु वह कल उन पशुत्व की इच्छाओं को छोड़ देगा, तो देव हो जायेगा। देव की इच्छाओं को छोड़ेगा, तो भगवान हो जायेगा।

प्रश्न – दिव्य और निर्जीव में क्या अन्तर है?

उत्तर – दिव्य और निर्जीव में यह अन्तर है कि निर्जीव वस्तु में कोई चेतना नहीं होती और वह विश्व का एकत्व बोध नहीं कर सकती। जैसे यह दीवार यहाँ है, यह मेरे सिर पर गिरे या तुम्हारे सिर पर गिरे, उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। दीवार, दीवार है, गिर गयी, गिर गयी। पर जिस मनुष्य ने अपनी सारी इच्छाओं को छोड़ दिया है और दिव्य हो गया है, वह सारे विश्व के कल्याण के लिए जीता है, यह उसकी पहचान है। दीवार विश्व के कल्याण के लिए नहीं जी सकती है। पर जिसने अपनी इच्छाओं को त्याग दिया है, वह विश्व मानव बन जाता है। वही बुद्ध है, वही विवेकानन्द है, वही ईसा है, वही महावीर है। इन लोगों ने अपनी इच्छाओं को छोड़ा और पूरे विश्व के लिए जीये, सबको अपना समझते थे। आत्मविजेता अपने जीवन काल में ही विस्तृत हो जाता है, मरने के बाद नहीं। यदि हम जीवित अवस्था में सारी इच्छाओं को छोड़ दें, तो विश्व-ब्रह्माण्ड से एक हो जाते हैं। शरीर बहुत छोटी बात है। उसका शरीर गया भी, तो कोई अन्तर नहीं पड़ता है, क्योंकि वह सारे विश्व को एक समझता है।

क्या ज्योतिष, भूत-प्रेतादि का प्रभाव पड़ता है?

उत्तर – संसार के इतिहास में ऐसा कोई ज्योतिषी नहीं

शेष भाग पृष्ठ ५०४ पर

प्रश्नोपनिषद् (५०)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

शंका – ज्ञानस्य ज्ञेयत्वम् एव इति तदपि अन्येन तदपि अन्येन इति त्वत्-पक्षे अतिप्रसङ्ग इति चेत्।

– ज्ञान, ज्ञेय-रूप ही है, (उससे अभिन्न है), तथापि ''वह ज्ञान किसी अन्य का ज्ञेय है'' और ''वह (परवर्ती) ज्ञान भी किसी अन्य का ज्ञेय है'', यदि ऐसा कहें और इसे (आपकी ओर से) अनवस्था दोष माने तो!

समाधान – न, तद्-विभाग-उपपत्तेः सर्वस्य। यदा हि सर्वं ज्ञेयं कस्यचित् तदा तद्-व्यतिरिक्तं ज्ञानं ज्ञानम् एव, इति द्वितीयो विभाग एव अभ्युपगम्यते अवैनाशिकैः, न तृतीयः तद्-विषय इति अनवस्थान् उपपत्तिः।

– ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि (ज्ञान और ज्ञेय रूप से) समस्त वस्तुओं का विभाग किया जा सकता है। चूँकि सभी वस्तुएँ किसी 'एक' की ही ज्ञेय हैं, तो उनसे भिन्न (उनका प्रकाशक) ज्ञान भी तो ज्ञान ही होता है। इस दूसरे विभाग को वैनाशिकों के सिवा अन्य सभी स्वीकार करते हैं। कोई तीसरा उसका विषय नहीं है, अत: इससे अनवस्था की प्राप्ति नहीं होती।

शंका – ज्ञानस्य स्वेन एव अविज्ञेयत्वे सर्वज्ञत्व-हानिः इति चेत्।

– यदि ज्ञान को, स्वयं से ही ज्ञेय नहीं मानेंगे, तो (परमात्मा की) सर्वज्ञता नहीं हो सकती, ऐसा माने तो!

समाधान – सः अपि दोषः तस्य एव अस्तु किं तत् निबर्हणेन अस्माकम्। अनवस्था-दोषः च ज्ञानस्य ज्ञेयत्व-अभ्युपगमात्। अवश्यं च वैनाशिकानां ज्ञानं ज्ञेयम्। स्वात्मना च अविज्ञेयत्वेन अनवस्था अनिवार्या।

– वह दोष भी उस (शून्यवादी वैनाशिक) का ही हो सकता है; हमें उस दोष को मिटाने की क्या आवश्यकता है? अनवस्था दोष भी ज्ञान का ज्ञेयत्व मानने से ही है। वैनाशिकों के मत में ज्ञान अवश्य ही ज्ञेय है। स्वयं का ज्ञेय न होने के कारण, (उनके लिये) अनवस्था दोष अनिवार्य है।

शंका – समान एव अयं दोष इति चेत्।

– यह दोष तो दोनों पक्षों में समान है, यदि ऐसा कहें तो?

समाधान – न ज्ञानस्य एकत्व-उपपत्तेः। सर्व-देश-काल-पुरुष-आदि अवस्थम् एकम् एव ज्ञानम्।

– नहीं, ज्ञान का एकत्व सिद्ध होने से (अनवस्था दोष नहीं बनता)। देश (स्थान), काल तथा पुरुष आदि सभी अवस्थाओं में ज्ञान (चैतन्य) एक ही है।

नाम-रूप-आदि-अनेक-उपाधिभेदात् सवित्र-आदि-जल-आदि-प्रतिबिम्ब-वद्-अनेकधा-अवभासते इति। न असौ दोषः। तथा च इह इदम् उच्यते।

नाम-रूप आदि के विभिन्न उपाधियों के भेद से, जल-आदि में प्रतिबिम्बित हो रहे सूर्य-आदि के समान एक ही ज्ञान (चैतन्य) अनेक प्रकार से भासित हो रहा है। अत: यह दोष नहीं है। इसीलिये यहाँ यह (कलाओं की उत्पत्ति की) बात कही जाती है।

शंका – ननु श्रुतेः इह-एव-अन्तःशरीरे परिच्छिन्नः कुण्ड-बदरवत् पुरुषः इति।

– परन्तु श्रुति के अनुसार तो, 'वह पुरुष, कुंडी (कटोरी) में बेर के समान, इस शरीर के भीतर ही परिच्छिन्न (स्थित) है।''

समाधान – न, प्राणादि-कला-कारणत्वात्। न हि शरीर-मात्र-परिच्छिन्नस्य प्राण-श्रद्धा-आदीनां कलानां

शेष भाग पृष्ठ ५०४ पर

छठ-पूजा विशेष

शास्त्रों में लोक महापर्व छठ

उत्कर्ष चौबे

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सनातन परम्परा में लोकाचार की मान्यता रही है। मनुस्मृति ने इसे 'सदाचार' कहा है। अन्य स्मृतिकार तथा पुराणों में भगवान व्यासजी के द्वारा भी इसे धर्म के एक साधन के रूप में मान्यता दिया गया है। जन-साधारण से धर्म को जोड़ने के लिए लोकाचार पर विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है। **'लोकाचारात् स्मृतिर्ज्ञेया स्मृतेश्च श्रुतिकल्पनम्'** की जो प्रक्रिया है, उसे आज प्रचारित किया जाए, तो हम पूरे समाज के साथ एक धरातल पर समरस प्रतीत होंगे। यह सामाजिक समरसता का कारक तत्त्व सिद्ध होगा।

भारत के हर क्षेत्र में ऐसे अनेक लोकाचार हैं, जो सीधे किसी न किसी धार्मिक मान्यता से जुड़े हैं। लोक की धारा निरन्तर गतिशील है। ऐसे अनेक धार्मिक कृत्य हैं, जो केवल लोक-परम्परा में हैं, उनका शास्त्र में उल्लेख नहीं है। विगत शती से हमने उन्हें अवैदिक कहकर 'लोक' को खो दिया है। लोक-देवताओं की भी यही स्थिति है। यद्यपि लोकाचार इतना विशाल है कि उसे एक अंक में समेट पाना कठिन है। किन्तु यहाँ ध्यातव्य विषय यह है कि इन सभी लोकाचारों का बीज हमारे शास्त्रों से ही अंकुरित हुआ है, जो आगे चल कर लोक-संस्कृति में हरे-भरे फसलों का रूप ले लेता है।

लोकाचार की शास्त्रीय मान्यता का विवेचन सर्वप्रथम अपेक्षित है। मनु महाराज तथा याज्ञवल्क्य ने इसके महत्त्व को लिखा है। पारस्कर गृह्यसूत्र में भी 'लोकात्' लिखकर लोकाचार की मान्यता दी गयी है। यहाँ तक कि व्याकरण में पतंजलि ने लिंग-निर्णय में लोक को ही प्रमाण माना है। हमारे नगरों व गाँवों में विशेष रूप से अनेक लोक-देवियों की पूजा की जाती है, उनके मन्दिर, पिण्डी अथवा थान (स्थान) प्राप्त होते हैं, जिनका कोई भी उल्लेख अथवा स्वरूप-कल्पना शास्त्रों में दृष्टिगोचर नहीं होता है। संस्कृति शास्त्र के तथाकथित सेक्युलर विद्वान उन्हें Tribal deities अथवा Deities of Non-Vedic Origin कहकर विभेद की सृष्टि कर विद्वेष फैलाते हैं। किन्तु विडम्बना यह है कि इन सभी लोकाचारों में प्रसिद्ध देवी-देवताओं व परम्पराओं का कहीं-न-कहीं शास्त्रीय आधार होता है तथा जैसा कि हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं, ये सभी स्मृतिकारों द्वारा समर्थित व

समाहित हैं। यहाँ तक कि देवी भागवत महापुराण के नवम् स्कन्ध के प्रथम अध्याय में स्वयं यज्ञेश्वर भगवान नारायण ने लोक संस्कृति में प्रसिद्ध हमारी ग्राम देवियों को प्रमाणित करते हुए भारत के गाँवों में पूजित उन सभी असंख्य देवियों को मूल प्रकृति पराम्बा भगवती की एक प्रकृति (अंश) के रूप में स्वीकृति दी है –

एकनन्दा च दुर्गा सा श्रीकृष्णभगिनी सति।
बह्वयः सत्यः कलाश्चैव प्रकृतेरेव भारते।
या याश्च ग्रामदेव्यः स्युस्ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः।।

(देवीभागवत, ९स्कन्ध, १अध्याय)

मगध, मिथिला व भोजपुरी क्षेत्र में पनप कर समूचे विश्व-पटल पर सुमधुर लोक गीतों से युक्त होकर लोक जीवन की सम्पूर्ण मधुरता का प्रसार आज छठ पूजा कर रही है। लोक आस्था के इस महापर्व का लोकातीत शास्त्रीय पक्ष भी है, जो हम नहीं जानते। इसे महापर्व की संज्ञा क्यों दी जाती है? सम्भवत: जिस प्रकार 'शारदीय महापूजा चतुर्कर्ममयी शुभा' होने के कारण दुर्गोत्सव को महापूजा के विशेषण को सिद्ध करती है। ठीक उसी प्रकार छठ पूजा का विशेष्य 'महापर्व' होना, इसके व्यापक रूप तीन व्रत-पर्व का समवेत स्वरूप से होने के कारण है – कार्तिकेय को देवताओं की सेना का सेनापति बनना, षष्ठी देवी की पूजा एवं सूर्यपूजा।

सभी पुराणों ने एकीकृत होकर देवसेनापति भगवान कार्तिकेय का सम्बन्ध कार्त्तिक मास से माना है। कौमार सम्प्रदाय में तो तमिलनाडु में कार्तिक शुक्ल षष्ठी को विशेष उत्सव मनाया जाता है, जिसका प्रारम्भ दीपावली के दूसरे दिन से ही हो जाता है। षष्ठी तिथि में तारकासुर वध का प्रसंग प्राप्त होता है। षष्ठी देवी का ही तद्भव शब्द छठी माता हैं। परमात्मा के छठवें अंश से आर्विभूत होने के कारण इनका नाम षष्ठी देवी है तथा इन्हें षष्ठी तिथि अति प्रिय है। मुख्य रूप से बालकों की यह देवी हैं, जो आरोग्य व सौभाग्य भी प्रदान करती हैं। देवसेना भी इनका नाम है तथा इनका वरण कुमार कार्तिकेय ने किया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण व देवी भागवत में इनके आविर्भाव व पूजन का वर्णन मिलता है, जिसे छठ पर्व के विश्लेषक विद्वान बताते हैं। किन्तु जिस रूप में आज पूजा का प्रचलन है, उस पर प्रकाश नहीं डाला जाता। भगवान कार्तिकेय को 'देवसेनापते श्रीमन्' तथा षष्ठी देवी की तरह ही पुत्र प्रदायक कहा गया है –

कार्तिकेयं नमस्यामि गौरीपुत्रं सुतप्रदं।
षडाननं महाभागं सर्वसेनासमावृतं।।

उसी प्रकार भगवान भुवन भास्कर भी षष्ठी देवी की तरह ही आरोग्य प्रदाता हैं तथा इन्हें सप्तमी तिथि अति प्रिय है। सूर्य की दो पत्नियाँ हैं – देवशिल्पी विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा तथा छाया, जिन्हें क्रमश: उषा व प्रत्युषा देवी के रूप में जाना जाता है। भगवान कार्तिकेय की भी दो पत्नियाँ हैं – देवसेना देवी षष्ठी तथा वल्ली (जनजातीय शिकारी रजा पुलिन्द की पुत्री)। वस्तुत: ये इच्छाशक्ति और क्रिया शक्ति की द्योतक हैं। कहीं-कहीं षष्ठी देवी को भास्कर भगिनी के रूप में भी वर्णन किया गया है। इस प्रकार भगवान कार्तिकेय, देवी षष्ठी व सूर्य देव का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध हम अच्छी तरह समझ सकते हैं।

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में छठ को स्कन्द षष्ठी तथा विवस्वत्-षष्ठी इन दोनों नामों से कहा गया है। १३वीं शती के प्रसिद्ध स्मृतिकार हेमाद्रि ने अपने ग्रन्थ चतुर्वर्ग-चिन्तामणि में प्रत्येक मास की सप्तमी तिथि में भगवान सूर्य की उपासना का वर्णन किया है तथा उनकी महिमा का वर्णन अलग-अलग पुराणों के वचनों के द्वारा प्रतिपादित किया है। हेमाद्रि ने उल्लेख किया है कि व्रतखण्ड के ११वें अध्याय में प्रत्येक मास में भगवान सूर्य के विभिन्न रूपों की पूजा की जाती है – जैसे माघ में वरुण, फाल्गुन में सूर्य, चैत्र में अंशुमाली, वैशाख में धाता, ज्येष्ठ में इन्द्र, आषाढ़ एवं श्रावण मास में रवि, भाद्र में भग, आश्विन में पर्जन्य, कार्तिक में त्वष्टा, अग्रहण में मित्र तथा पौष में विष्णु के रूप में भगवान सूर्य की पूजा की जाती है। इस प्रकार भगवान सूर्य की उपासना के साथ सप्तमी तिथि का सम्बन्ध रहा है। इसी अध्याय में आगे लिखा गया है कि यह वार्षिक व्रत कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को आरम्भ करना चाहिए। इस प्रकार, हेमाद्रि के अनुसार वर्ष भर के सप्तमी व्रतों में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्तिक शुक्ल सप्तमी को माना गया है। वर्तमान छठ का प्रारम्भिक रूप हमें यहाँ मिलता है।

लगभग इसी काल में मिथिला के धर्मशास्त्री चण्डेश्वर ने कार्तिक शुक्ल षष्ठी के दिन भगवान कार्तिकेय को अर्घ्य देने तथा सप्तमी के दिन भगवान भास्कर की पूजा का विधान किया है। यहाँ सप्तमी की पूजा का विधान करते हुए उन्होंने भविष्य-पुराण को उद्धृत किया है कि पंचमी तिथि को एकभुक्त करें, यानी एकबार ही भोजन करें, षष्ठी को निराहार रहें तथा सप्तमी को भगवान् भास्कर की पूजा करें, जिससे सूर्यलोक की प्राप्ति, स्वर्ग की प्राप्ति, जीवन पर्यन्त पुत्र-पौत्र आदि के साथ धन-धान्य की प्राप्ति आदि होती है। छठ पर्व का आधुनिक रूप भी इसी प्रकार है। चतुर्थी को नहाय-खाय के बाद पंचमी को सारे दिन उपवास रहकर संध्या के समय गुड़ के परमान्न का भोजन किया जाता है। षष्ठी तिथि को भी निर्जला उपवास रहकर अस्ताचलगामी सूर्य को अर्घ्य देकर सप्तमी तिथि को पुन: उदीयमान बाल रवि को अर्घ्य देकर पारण किया जाता है। कार्तिक शुक्ल षष्ठी एवं सप्तमी तिथि को पारस्परिक रूप में विवस्वत् षष्ठी का पर्व मनाया जाता है। इसमें प्रधान रूप से संज्ञा सहित सूर्य की पूजा है। पौराणिक परम्परा में संज्ञा को सूर्य की पत्नी कहा गया है। रुद्रधर (१५वीं शती) के अनुसार इस पर्व की कथा स्कन्दपुराण से ली गयी है। इस कथा में दु:ख एवं रोग-नाश के लिए सूर्य का व्रत करने का उल्लेख किया गया है –

भास्करस्य व्रतं त्वेकं यूयं कुरुत सत्तमा:।
सर्वेषां दु:खनाशो हि भवेत्तस्य प्रसादत:।।

आगे इस व्रत का विधान बतलाते हुए कहा गया है कि पंचमी तिथि को एक बार ही भोजन कर संयमपूर्वक दुष्ट वचन, क्रोध आदि का त्याग करें। अगले दिन षष्ठी तिथि को निराहार रहकर सन्ध्या में नदी के तट पर जाकर धूप, दीप, घी में पकाये हुए पकवान आदि से भगवान भास्कर की आराधना कर उन्हें अर्घ्य दें। यहाँ रात्रि में जागकर पुन:

प्रात:काल सूर्य की आराधना कर अर्घ्य देने का विधान किया गया है। वर्तमान में खेमराज बेंकटेश्वर स्टीम्, मुम्बई द्वारा प्रथम प्रकाशित तथा नाग प्रकाशन, दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित स्कन्दपुराण में यह कथा उपलब्ध नहीं है। इस विषय में ध्यातव्य है कि उत्तर भारत की परम्परा में प्रचलित कथाओं का उत्स पुराणों में खोजने के लिये हमें पुराणों के उत्तर भारतीय संस्करण देखना चाहिए, मुम्बई संस्करण नहीं।

इसकी दूसरी कथा भविष्योत्तर-पुराण से संकलित की गयी है। इसके अनुसार जब पाण्डव गण द्यूत में हारकर वन-वास में थे, तब वे भाइयों के भरण-पोषण के लिये चिन्तित थे। इसी बीच अस्सी हजार मुनि उनके आश्रम में पधारे। उनके भोजन की चिन्ता में युधिष्ठिर अधिक घबड़ा उठे। तब द्रौपदी अपने पुरोहित धौम्य ऋषि से इसका समाधान पूछने लगीं। धौम्य ऋषि ने उन्हें भगवान सूर्य का व्रत रवि-षष्ठी करने का निर्देश दिया, जिसे प्राचीन काल में भी नागकन्या के उपदेश से सुकन्या ने किया था। इस प्रकार धौम्य ऋषि ने प्राचीन काल में शर्याति नामक राजा की पुत्री सुकन्या द्वारा किये गये छठ व्रत का वर्णन किया है। वहीं पर सुकन्या के द्वारा पूछने पर नाग-कन्याओं ने व्रत का नियम इस प्रकार कहा है –

कार्तिकस्य सिते पक्षे षष्ठी सप्तमीयुता।
तत्र व्रतं प्रकुर्वीत सर्वकामार्थसिद्धये।।
पञ्चम्यां नियमे कृत्वा व्रतं कृत्वा विधानतः।
एकाहारं हविष्यस्य भूमौ शय्यां प्रकल्पयेत्।।
षष्ठ्यामुपोषणं कुर्याद्रात्रौ जागरणं चरेत्।
मण्डपं च चतुर्वर्णं पूजयेद् दिननायकम्।।
नानाफलैः सनैवेद्यैः पक्वान्नाद्यैः प्रपूजयेत्।
उत्सवं गीतवाद्यादि कर्तव्यं सूर्यप्रीतये।।
तावदुपोषणं कुर्याद्यावत्सूर्यस्य दर्शनम्।
सप्तम्यामुदितं सूर्यं दद्यादर्घ्यं विधानतः।।
सदुग्धैर्नारिकेलैस्तु सपुष्पफलचन्दनैः। ....

इस प्रकार वर्तमान में प्रसिद्ध परम्परा की पूर्णरूपेण झलक हमें यहाँ प्राप्त होती है। पंचमी को खरना तथा व्रतियों द्वारा भूमि पर शयन आदि कठोर नियम। नाना फल-नैवेद्यों व पकवान के रूप में ठेकुआ, नारियल, प्रात: काल दूध का अर्घ्य आदि सभी कुछ। साथ ही घाटों पर इक्षुदण्ड (ईख) द्वारा निर्मित मण्डप व इस उत्सव में चार चाँद लगानेवाले पारम्परिक सुमधुर गीत तथा इन्हें गाकर किया गया रात्रि जागरण। इन्हीं शास्त्रीय वचनों का अवलम्बन कर तो हमारी नारियाँ गाती हैं –

जोड़े-जोड़े नारियल ले अइह हो बाबा,
छठ के बरत हम करिबे हो।
दिलवा में मईया के नेहवा लगल बा,
मईया के अरघ हम देबै हो।।

सुकन्या इन्हीं नाग-कन्याओं के उपदेश पर यह व्रत करने लगी, जिससे उसके पति च्यवन मुनि की आँखें नीरोग हो गयीं। इस पूर्वकथा को द्रौपदी से सुनाते हुए धौम्य ने द्रोपदी को भी यह व्रत करने का उपदेश दिया, जिसके फलस्वरूप वह भी प्रसन्नता से रहने लगी।

इसी क्रम में विभिन्न पुराणों में कृष्ण-पुत्र साम्ब के कुष्ठ निवारण के लिए कोणार्कादित्य की उपासना व शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का प्रसंग प्राप्त होता है। कहीं-कहीं अन्य लोगों के द्वारा भी ऐसी पूजा करने का वर्णन यत्र-तत्र मिल जाता है।

छठ का प्रसादी ठेकुआ तो आज विश्व प्रसिद्ध है, किन्तु छठ पूजा में एक और महत्त्वपूर्ण व शास्त्रीय पकवान का वर्णन हमें पुराणों में प्राप्त होता है, जिसे कसार या कचनवीया कहते हैं। लक्ष्मीधर ने (१२वीं शती) के 'कृत्यकल्पतरु' में इसका उल्लेख सूर्य के लिए नैवेद्य के रूप में किया है। उन्होंने लिखा है कि चावल के आटे को घी में भूनकर ईख के रस में पका कर 'कासार' बनाया जाता है। ईख के रस के बदले यदि मिसरी का प्रयोग किया जाए, तो वह 'सितासार' कहलाता है। लोक-संस्कृति में यह आज भी सुरक्षित है।

पूर्वांचल व बिहार की लोक-परम्परा में सूर्य षष्ठी में छठी मैया की पूजा से सम्बन्धित अनेक गीत तथा लोक-कथाएँ प्रचलित हैं। इस परम्परा का सम्बन्ध भविष्य-पुराण की एक कथा से है, जिसमें कार्तिक मास की षष्ठी तिथि को कार्तिकेय तथा उनकी माता (छ: कृतिकाओं को भी एकत्र रूप में षष्ठी देवी कहा गया है) की पूजा का विधान है। भविष्य-पुराण के उत्तर पर्व के ४२वें अध्याय में कहा गया है कि कार्तिकेय ने इस दिन तारकासुर का वध किया था। इस अध्याय में इस षष्ठी तिथि को सूर्य की पूजा करने का भी उल्लेख है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि कृतिका नक्षत्र छह ताराओं का समूह है तथा स्कन्द-षष्ठी नाम से एक व्रत का उल्लेख भी है।

इस विषय में यह संक्षिप्त आलेख है। छठ-पूजा से जुड़ी अन्य कथाओं व शास्त्रीय पद्धति का वर्णन छठ मईया की कृपा हुई, तो आगामी वर्ष विस्तार से करेंगे। किन्तु यहाँ

यह स्वत: स्पष्ट है कि छठ पूजा पूर्णत: शास्त्रीय है तथा लोक आस्था का महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। लोकाचार कितना भी महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, यदि वह शास्त्रसम्मत नहीं है, तो वह कभी भी सदाचार नहीं हो सकता। वही लोकाचार सदाचार है, आचार्यों द्वारा समर्थित व समाहित है, जिसका शास्त्रीय आधार होता है, जो शास्त्रों से प्रमाणित हो तथा श्रुति-सिद्ध हो। क्योंकि गीता में भगवान ने स्वयं कहा है –

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।

अत एव शास्त्रों की आज्ञा समझकर ही हमें कर्तव्य कर्म करना चाहिए। शास्त्रों के नियमों के अनुसार यह समझना चाहिए कि क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य। ऐसे नियमों और विनियमों को जानकर मनुष्य को इस प्रकार कार्य करना चाहिए कि वह क्रमश: उन्नत हो सके। सूर्य के पूजा के रूप में छठ का श्रुति-प्रमाण भी है, धर्म व स्मृति शास्त्रीय वचन भी है तथा इसका लोकसंग्रह का अथाह भंडार भी है। धर्म जिज्ञासा का पहला वचन श्रुति-प्रमाण को ही सर्वोच्च माना जाता है। छठ पूजा का उल्लेख शास्त्रों में कई स्थानों में मिलता है, तभी तो इसकी सनातनी परम्परा आज भी ज्यों की त्यों अक्षुण्ण है। क्योंकि आचार्यगण कहते हैं –

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति:।
द्वितीयं धर्मशास्त्रं तु तृतीयं लोकसंग्रह:।। ○○○

पृष्ठ ४९८ का शेष भाग

की अनिवार्यता का ही एक संकेत दें। गोस्वामीजी ने जो दोहा लिखा, वही वास्तविक उद्देश्य है और वह उद्देश्य क्या है? बोले –

उभय घरी अस कौतुक भयऊ।
जौ लगि कामु संभु पहिं गयऊ।। १/८५/१

महाराज, कोई बचा कि नहीं, धीरज, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, वेद, पुराण, सब भाग खड़े हुए। गोस्वामीजी ने कहा, कुछ लोग बच गये। कौन? बोले –

जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ।। १/८५

– जिसको भगवान ने बचा लिया। जिनको विश्वास था कि काम को हम नहीं, काम पर तो प्रभु की कृपा से ही विजय मिलती है, प्रभु ने उनकी रक्षा कर ली। इसका अर्थ है कि जब सजग भाव से हम अपने दोषों का निरीक्षण करते हैं और अन्त में यह मान लेते हैं कि हमें प्रभु की कृपा से इस बुराई पर विजय प्राप्त होगी, तब हम धन्य हो जायेंगे।

इसलिए हम काम को सूक्ष्म निरीक्षण और गहराई से देखें और अन्त में इस दोहे के साथ प्रभु का हमें आश्वासन है कि सब कुछ नष्ट हो जाने पर भी, वे जिसकी रक्षा करेंगे, वह बच जायेगा – 'जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ।' यही संकेत भगवान राम ने लक्ष्मणजी को किया।

बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ४९९ का शेष भाग

मिला, जिसने बता दिया हो कि संसार में कल निश्चित रूप से क्या होनेवाला है। भूत-प्रेतादि उन व्यक्तियों को प्रभावित करते हैं, जो मन से दुर्बल हैं। जिसका मन दृढ़ है, उस पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मनुष्य का कर्म जैसा है, वैसा वह बनता है। स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है कि जो हृदय से दुर्बल हैं, वही लोग ज्योतिष, पामेस्ट्री और भूत-प्रेत की चर्चा करते हैं। पुरुषार्थी कर्म करता है। कर्म से भाग्यरेखा, हस्तरेखाएँ बदल जाती हैं। किन्तु अहंकार मत रखो। इच्छारहित व्यक्ति भव-चक्र से निकल जायेगा। वही मुक्ति है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है – डिजायरलेसनेस इज गॉडलीनेस। ○○○

पृष्ठ ५०० का शेष भाग

कारणत्वं प्रतिपत्तुं शक्नुयात्। कला-कार्यत्वात् च शरीरस्य।

– नहीं (चैतन्य को परिच्छिन्न कहना उचित नहीं); क्योंकि वह (पुरुष) प्राण आदि कलाओं का कारण (उद्गम) है। चैतन्य यदि शरीर मात्र में परिच्छिन्न (सीमित) होगा, तो उसे प्राण, श्रद्धा आदि कलाओं के कारण रूप से कोई जान नहीं सकता। क्योंकि शरीर तो उन कलाओं का ही कार्य (फल) है।

न हि पुरुष-कार्याणां कलानां कार्यं सच्छरीरं कारण-कारणं स्वस्य पुरुषं कुण्ड-बदरम्-इव-अभ्यन्तरी कुर्यात्।

पुरुष के कार्यरूप कलाओं का कार्य होने से शरीर अपने कारण के कारण-रूप 'पुरुष' को कुंडी में बेर के समान, अपने भीतर नहीं कर सकता **(क्रमश:)**

जीवन नौका की पथप्रदर्शिका : बुद्धिमत्ता और प्रज्ञता

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

जीवन की इस जटिल यात्रा में हम प्राय: बुद्धि और प्रज्ञता की अवधारणाओं के साथ उलझ जाते हैं। जबकि इन दोनों का प्रयोग कभी-कभी एक दूसरे के स्थान पर होता है। इनमें अति सूक्ष्म अन्तर है, जो विश्व के प्रति हमारे दृष्टिकोण और पहुँच को परिभाषित करता है। बुद्धिमत्ता (Intelligence) संज्ञानात्मक ज्ञान के लिए आधार प्रदान करती है। यह प्राय: संज्ञानात्मक कौशल, ज्ञान प्राप्त करने और उसे प्रयोग में लाने की क्षमता को सन्दर्भित करती है। इसके अन्तर्गत तर्क करने की क्षमता, समस्या समाधान की क्षमता और वस्तुओं का विश्लेषण सम्मिलित है। परीक्षाओं में उत्कृष्टता प्राप्त करने से लेकर जटिल कलन विधि (एल्गोरिथम) में कुशलता प्राप्त करने तक, बुद्धिमत्ता विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती है और अकादमिक तथा व्यावसायिक लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक है।

प्रज्ञता (Wisdom) यानी विवेक, प्रकृष्ट बुद्धि। यह हमें शुष्क तर्क से परे ले जाती है। यह सूझबूझ की कला है, जो जीवन के अनुभव, मनन, मार्गदर्शन और मानव प्रकृति की एक गहन समझ के माध्यम से विकसित होती है। प्रज्ञता एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करती है। यह हमें समुचित निर्णय लेने में सहायता करती है, जो तुरन्त ही परिणाम के रूप में प्रतिध्वनित होती है। इसमें सहानुभूति, विनम्रता और दीर्घकालिक परिणामों को ध्यान में रखने की क्षमता सम्मिलित है।

आज सूचना एवं प्रौद्योगिकी से घनीभूत विश्व में बुद्धिमत्ता और प्रज्ञता के बीच का विभेदन महत्त्वपूर्ण चर्चा का विषय है। बुद्धिमत्ता हमें प्रौद्योगिकी और नवाचार की जटिलताओं को समझने में सहायता करती है, जबकि प्रज्ञता हमें उनके नैतिक परिणामों और सामाजिक प्रभाव के अनुसन्धान करने के लिए प्रेरित करती है। यह हमें सतर्क रहने का सन्देश देती है। प्रज्ञता के बिना ज्ञान अवांछित परिणाम दे सकता है। इण्टरनेट के अनवरत प्रचण्ड वेग और इन्द्रिय लोलुपता के आकर्षण के कारण आज के

युवाओं के लिए बुद्धिमत्ता और प्रज्ञता दोनों को विकसित करना अनिवार्य है। शिक्षा मानसिक विकास के लिए आधार प्रदान करती है, जो विश्लेषणात्मक सोच और विश्लेषण की क्षमता को बढ़ाती है।

विचार करें, एक युवा छात्र का जो लक्ष्य और अनिश्चितता के चौराहे पर खड़ा है। अपनी तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता से उसने शैक्षिक दृष्टिकोण में उत्कृष्टता प्राप्त की है और एक सफल भविष्य की आकांक्षा करता है। हालाँकि वास्तविक प्रज्ञता ही उसे व्यक्तिगत सम्बन्धों में निर्देशन, समग्रता के महत्त्व को समझने और जीवन जीने की कला को अनुभूत करने में मदद करती है। यह उसे पथ प्रदर्शक की खोज करने, एकान्त के महत्त्व को स्वीकार करने और दूसरों के संघर्षों के प्रति सहानुभूति को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

सारांश में, बुद्धिमत्ता ज्ञान प्राप्ति के लिए एक कंपास की तरह कार्य करती है, जबकि प्रज्ञता नैतिक और नीतिपरायणता के संचार के लिए कार्य करती है। यह हमें केवल 'हम कर सकते हैं?' ही नहीं, बल्कि 'हमें क्या करना चाहिए?' यह विचार करने के लिए भी प्रोत्साहित करती है। हमारे ज्ञान की एक सीमा होती है, अत: अनिश्चितता को विनम्रता से स्वीकार करने में ही सच्ची समझ निहित है।

जब हम जीवन की यात्रा प्रारम्भ करते हैं, हमें बुद्धिमत्ता और प्रज्ञता दोनों को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। हमें व्यापक मनोभाव और करुण हृदय के साथ ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि बुद्धि और अनुभव के समन्वय में ही सार्थक और उद्दीपक जीवन-पथ का निर्माण होता है, जो पथ

केवल हमारे ज्ञान से नहीं, बल्कि हम ज्ञान को कैसे अपनाएँ और दूसरों के साथ साझा करें, इस पर निर्भर करता है।

जीवनकाल में बुद्धिमत्ता असंख्य सम्भावनाओं की जटिलताओं को संज्ञानात्मक क्षमताओं के आधार पर सुलझाया करती है, जबकि प्रज्ञता जीवन के मर्म और उद्देश्य की रचना करती है। ये दोनों मिलकर भविष्य के लिए एक ऐसे मार्ग की ओर प्रकाश डालते हैं, जहाँ ज्ञान में संवेदना, नवाचार में नैतिकता और विकास में गहन अन्तर्दृष्टि होती है।

जीवन की भूल-भुलैया यात्रा में सार्थक और सन्तुलित जीवन के लिए बुद्धिमत्ता और प्रज्ञता का समन्वय आवश्यक है।

प्राचीन भारत में विद्यानगर नामक राज्य था। यह राज्य अपनी शिक्षा, ज्ञान, संस्कृति और प्रकृति के समन्वय के लिए प्रसिद्ध था। उस राज्य में आर्यन और सरस्वती नामक दो युवा विद्वान् बहुत प्रसिद्ध थे। आर्यन अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और त्वरित बुद्धिमत्ता के लिए प्रसिद्ध थे और विद्यानगर के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय के गौरव थे। ज्ञान की देवी के नाम से प्रसिद्ध सरस्वती, जीवन की गहन समझ और ज्ञान के लिए प्रसिद्ध थीं।

एक बार राज्य में अभूतपूर्व संकट आया। विद्यानगर की जीवन-रेखा पवित्र गंगा नदी रहस्यमय रूप से सूखने लगी। खेत बंजर हो गए और लोग निराश हो गए। राजा हर्षवर्धन ने आर्यन और सरस्वती को राजदरबार में बुलाया।

राजा ने कहा, 'विद्यानगर की आत्मा संकट में है', 'मैं तुम दोनों को इस आपदा का कारण खोजने और भूमि का सन्तुलन पुन:स्थापित करने का उत्तरदायित्व देता हूँ।'

आर्यन और सरस्वती कर्तव्य का पालन करते हुए आपदा के कारण को ज्ञात करने के लिए शोध करने लगे। आर्यन विपुल ग्रन्थों, शास्त्रों और प्राचीन पांडुलिपियों का विश्लेषण करने लगे। उन्होंने हिमालय में एक रहस्यमयी मन्दिर के बारे में पता लगाया जिसमें ऐसा वर्णन किया गया था कि मन्दिर में एक पवित्र अवशेष कल्पवृक्ष बीज था, जो नदी को पुनर्जीवित करने की शक्ति रखता है। ग्रन्थों के अनुसार मन्दिर हिमालय के हृदय में स्थित है। आर्यन ने विश्लेषण करके समझाया कि यदि हम कल्पवृक्ष बीज को प्राप्त कर लेते हैं, तो हम अपने राज्य को बचा सकते हैं।

सरस्वती भी आर्यन के शोध से सहमत हो गईं। वे दोनों हिमालय की यात्रा पर निकल पड़े। खतरनाक चट्टानें, भयंकर बर्फीले तूफान और रहस्यमयी प्राणी से युक्त मार्ग खतरों से भरा था। आर्यन की बुद्धिमत्ता भौतिक चुनौतियों का सामना करने में सहायक सिद्ध हुई, लेकिन शीघ्र ही आर्यन को एक परीक्षा का सामना करना पड़ा, जिसमें केवल बुद्धिमत्ता की आवश्यकता नहीं थी।

मन्दिर के प्रवेश द्वार पर आर्यन की भेंट एक महान् साधु से हुई, जो कल्पवृक्ष के बीज का रक्षक था। साधु ने मुस्कुराते हुए कहा, मन्दिर में प्रवेश करने के लिए आपको मेरे प्रश्न का उत्तर देना होगा।

प्रश्न – सच्चे ज्ञान का सार क्या है?

आर्यन ने विभिन्न प्रकार के ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, कला के ज्ञान द्वारा उनके प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न किया, लेकिन साधु आर्यन के किसी भी उत्तर से सहमत नहीं हुए। सरस्वती ने अपनी गहन समझ और विपुल ज्ञान से साधु के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा, सच्चा ज्ञान, आत्मा की समझ, अनुभूति और जीवन के परस्पर सम्बन्ध की समझ में निहित है। यह विनम्रता और करुणा है, यह वह अनुभव है, जिसमें हम सभी पूर्ण के अंश हैं।

साधु सरस्वती के उत्तर से संतुष्ट हो गये और कहा कि आपने ठीक उत्तर दिया है। प्रज्ञता अर्थात् विवेक, प्रकृष्ट बुद्धि, वास्तव में केवल जानकारी या सूचना नहीं है; यह बुद्धिमत्ता से परे जाकर भावनात्मक, सामाजिक और आध्यात्मिक पहलुओं को शामिल करके उचित निर्णय लेती है और जटिल परिस्थितियों का प्रभावी ढंग से निर्देशन करती है।

अब उन्हें मन्दिर में प्रवेश की अनुमति मिल गई। उन्होंने कल्पवृक्ष के बीज को प्राप्त किया। अपनी यात्रा के दौरान आर्यन ने कहा, 'सरस्वती, आज मैंने सीखा कि बुद्धिमत्ता हमें उत्तर प्रदान कर सकती है, लेकिन प्रज्ञता उत्तरों के मर्म और सार को प्रदान करती है। आपकी प्रज्ञता ने हमारी सफलता को सम्भव बनाया।'

सरस्वती ने धीरे से मुस्कुराते हुए कहा, 'आर्यन आपकी बुद्धिमत्ता और जानकारी ने हमें यहाँ तक पहुँचाया। यह बुद्धिमत्ता और प्रज्ञता (ज्ञान) का मिलन ही है, जो सच्ची समझ और सामंजस्य लाता है।'

शेष भाग पृष्ठ ५२४ पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (४०)

(आठवाँ अध्याय ८/३)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

हरिपादाब्जमाश्रित्य तस्मिन् भक्तिपरायणः।

अश्नन् पिबन् सुखं यामि जगद्रूपरसालये।।१३

– इस संसार रूपी आनन्द की कुटी में श्रीहरि के पादपद्मों का आश्रय लेकर और उनके प्रति भक्तिपरायण होकर मैं खाता-पीता और आनन्द लूटता हूँ।

राजा ह वै महातेजास्त्रुटिमान् जनकः कथम्।

इहामुत्र समीकृत्य योऽभोजि दुग्धभाजनम्।।१४।।

– राजा जनक महान तेजस्वी थे। उनमें क्या त्रुटि थी? उन्होंने इधर-उधर (लौकिक-पारलौकिक) दोनों ओर सम्भाल कर दूध पीया था (भोग किया था)।

परमहंसदेवं तु कश्चित् पप्रच्छ वै पुमान्।

किं नु स्थित्वापि संसार ईश्वरोपासनं भवेत्।।१५।।

– परमहंस देव जी से किसी ने पूछा – क्या संसार में रहकर भी ईश्वर की उपासना करना सम्भव है?

श्रीरामकृष्ण उवाच

कामारपुष्करे देशे बहुशो दृष्टावानहम्।

स्त्रियो मुसलयन्त्रेण चिपिटोत्पादने रताः।।१६।।

– श्रीरामकृष्ण ने कहा – कामारपुकुर में मैंने कई बार महिलाओं को चिउड़ा कूटते हुए देखा है।

तान् भ्रामयति खलस्थान् स्त्री करैकेन काचन।

अपरेण च साङ्कस्थं शिशुं पाययति स्तनम्।।१७।।

– एक महिला एक हाथ से ढेंकी के गड्ढे में हाथ से चिउड़ा चला रही है और दूसरे हाथ से बच्चे को गोद में लेकर दूध पिला रही है। **(क्रमशः)**

कविता

काली काली नित्य भजूँ मैं

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

काली-काली नित्य भजूँ मैं, काली ही जग की आधार ।
दिगम्बरा माँ शिव-अधिष्ठिता, करती हो तुम रिपु-संहार।।
भक्तजनों की आश्रयदायिनि, मुंडमालिनी सुख-आगार ।
भयंकरी माँ भवभयहारिणि, हो अन्तर से बहुत उदार ।।
मंगलकारिणि सिद्धि-विधायिनि, तुम रत सदा जगत-उपकार।
विविध रूप तुम धारण करती, सच्चितसुख तुम हो साकार।।
सुर-नर-मुनि से पूजित माता, मेरी तुमसे यही गुहार ।
तव पद प्रेम मुझे अब दो माँ, हरो सकल मम दोष-विकार।।

स्तोत्र

महाकाली-स्तोत्रम्

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गया, बिहार

कालिके नमोऽस्तुते, करालिके नमोऽस्तुते ।
प्रचंडरूपधारिणी, पराम्बिके नमोऽस्तुते ।।
दैत्यप्राणहारिणी, जगतप्रकाशकारिणी ।
बलंशुभंप्रदायिणी, सुराम्बिके नमोऽस्तुते ।।
महिषमानमर्दिणी, निशुंभ-शुंभ घातिनी ।
सर्वव्याधिनाशिनी, सर्वाम्बिके नमोऽस्तुते ।।
रक्तबीजतारिणी, खड्गप्रहारकारिणी ।
नृमुंडमालधारिणी, चामुंडिके नमोऽस्तुते।।
शैलपुत्री नामिनी, अखंड ब्रह्मचारिणी ।
चंद्रघंटधारिणी, कूष्मांडिके नमोऽस्तुते।।
स्कंदपुत्रपालिनी, जयन्ती कात्यायनी ।
कालरात्रिरूपिणी, उग्राम्बिके नमोऽस्तुते।।
महागौरी शैलजे, गणेशमातुके भजे ।
समस्तसिद्धिदायिनी, सदाम्बिके नमोऽस्तुते।।
विश्वनाथतोषिणी, भुवनत्रयविपोषिणी ।
सर्वशक्तिदायिनी, विश्वाम्बिके नमोऽस्तुते ।।
भुक्ति-मुक्ति कारिणी, त्रिशुल-चक्र धारिणी ।
समस्तपापनाशिनी, अनिलाम्बिके नमोऽस्तुते।।

भारतीय चिन्तन में शक्तितत्त्व

प्रो. युगल किशोर मिश्र

शताब्दी पीठ आचार्य, भारत अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

आप जानते हैं कि शक्ति का स्थूल अर्थ सामर्थ्य है और सामर्थ्य शब्द साकांक्ष है। अर्थात् सामर्थ्य शब्द सुनते ही किस कार्य में सामर्थ्य है, यह जिज्ञासा होती है। किसी एक कार्य-विशेष में न लेकर समस्त कार्यों में सामर्थ्य या शक्ति है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि शक्ति और शक्तिमान में भेद नहीं होता। बिना शक्तिमान के निराधार शक्ति नहीं रह सकती और बिना शक्ति के शक्तिमान का कोई रूप नहीं समझा जा सकता। उदाहरणस्वरूप किसी पदार्थ के सम्बन्ध में जो जानते हैं, उसकी शक्ति को ही जानते हैं। जैसे कोई व्यक्ति गौर है, तो यह गौरवर्णता या सुन्दरता उसकी शक्ति है, जिसके कारण लोग उसकी इस सुन्दरता की शक्ति से आकर्षित होकर उसकी प्रशंसा करते हैं। अगर शक्तियों को एक ओर निकाल कर रख दें और फिर हम शुद्ध पदार्थ का कोई रूप समझने की चेष्टा करें, तो उसका शुद्ध रूप कभी भी समझ में नहीं आएगा। इसी प्रकार ईश्वर को भी जब हम समझने की कोशिश करते हैं, तो उसकी शक्तियों के द्वारा ही करते हैं। जैसे ईश्वर जगत का सृष्टिकर्ता है, वह जगत का पालनकर्ता है, वह भक्तों की रक्षा करता है एवं दुष्टों का संहार करता है। इसी बात को रामायण में, महाभारत में ईश्वर को केन्द्र में रखकर उनकी शक्तियों के माध्यम से परिचित कराया गया। अत: शक्ति को छोड़कर ईश्वर का रूप भी अभिज्ञेय हो जाता है। फलत: शक्ति और शक्तिमान अभेद है, यह मानना पड़ेगा।

शक्ति और शक्तिमान में तादात्म्य सम्बन्ध है। शास्त्रों में तादात्म्य का लक्षण कहा गया है – भेद सहिष्णु अभेद – अर्थात् भेद है, लेकिन इतना सूक्ष्म भेद है कि वह अभेद ही दिखाई पड़ता है। भेद रहते हुए अभेद को तादात्म्य कहते हैं। उदाहरणार्थ जब हम दीपक जलाते हैं, तो उस दीपक की दीपशिखा का प्रकाश फैलता है। उस दीपशिखा और दीपशिखा के प्रकाश में तादात्म्य सम्बन्ध है। क्योंकि दीपशिखा और प्रकाश एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। अगर हम दीपशिखा को हटा दें, तो प्रकाश भी हट जायेगा। लेकिन अगर हम दीपशिखा के ऊपर हाथ डालें, तो तुरन्त ही हमारे हाथों में फफोले पड़ जाएँगे। वहीं अगर हम प्रकाश के पास हाथ लाएँ, तो हमारे हाथ नहीं जलेंगे। इसी से हमें यह मानना पड़ेगा कि ये भेद और अभेद दोनों ही हैं। यहीं प्रकाश शक्ति है और दीपक-ज्योति शक्तिवाली है। इनका जब भेद से व्यवहार करना होता है, तब कहा जाता है दीप का प्रकाश और अभेद से व्यवहार किया जाता है, तब कहते हैं केवल प्रकाश। इसलिये ब्रह्मतत्त्व से तादात्म्य सम्बन्ध रखनेवाली जो शक्ति है, इसकी उपासना प्रत्येक मानव के लिए अपिरहार्य हो जाती है।

यदि हम दूसरी दृष्टि से देखें, तो मानव के लिए यह संसार एक रणक्षेत्र है। क्योंकि इस संसार में जो भी मानव आते हैं, वे संघर्ष करते हैं तथा अपने लिये वे विजय की कामना करते हैं। इस बात को दृष्टिगत करते हुये हमारे ऋषियों ने मनुष्य के लिये नवरात्र में शक्ति की उपासना करने का विधान किया। ताकि हम महाशक्ति की उपासना कर अपने में शक्ति का संचार कर लें।

हमारे शास्त्र जगत को दो भावों से देखते हैं। एक भाव व्यष्टि रूप से और दूसरा भाव समष्टि रूप से। व्यष्टि जीव जैसे एक व्यक्ति जो उपासक है और समष्टि रूप जो जगत्-नियन्ता परमेश्वर है, जो उपास्य है। यह भी बात जानने योग्य है कि कभी व्यष्टियों से समष्टि बनती है और कभी समष्टि से व्यष्टि बनती है। जैसे एक-एक वृक्ष मिलकर बृहत् वन बन जाता है। अलग-अलग वृक्ष की सत्ता है, लेकिन वह सत्ता जब बृहत् आकार ले लेती है, तो वह समष्टि बन जाती है। उसे समष्टि रूप में हम वन कहते हैं।

इसके विपरीत समष्टि से भी व्यष्टि बनती है। जैसे अग्नि की ज्वाला से छोटे-छोटे अग्नि-कण बाहर निकलते हैं अथवा मेघ से जल बरस कर पृथक जल के स्त्रोत बन जाते हैं। ईश्वर से जगत् की उत्पत्ति समष्टि से व्यष्टि के रूप में हुई। इस प्रकार यह कहना उचित होगा कि ईश्वर जगत् नियन्ता समष्टि रूप जगदीश्वर शक्ति-कण और वह अनन्त

शक्तियों का भण्डार है। उसी सर्वशक्तिमान से अल्प मात्रा में व्यष्टि जीवों को शक्ति मिली हुई है। जब भी कोई जीव अपनी शक्ति बढ़ाना चाहे अर्थात् अल्प शक्ति से महाशक्ति बनना चाहे, तो उसका मात्र उपाय यह है कि वह शक्तिघन परमात्मा की उपासना करे, तो वह स्वयं उनकी कृपा से शक्तिमान बन जाएगा।

मानव के मन में यह शक्ति है कि वह जिसमें लगाया जाता है, उसके गुण एवं धर्मों को वह अपने में लेता रहता है। अगर वह उसमें स्थित हो गया, तो वह स्वयं तदाकार हो जाता है, साथ ही अन्य इन्द्रियों को भी तदाकार बना देता है। अतएव भारतीय संस्कृति में नवरात्र आदि विशिष्ट अवसरों पर शक्ति की उपासना का विधान है। कहा गया है कि –

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा।।

अर्थात् भूत भविष्य वर्तमान जो कुछ वस्तु संसार में है, उन सबमें जो शक्ति है, हे जगत-जननी परमात्मरूप आप हैं। आप ही सबकी आत्मा हैं। आपकी स्तुति करने में कौन समर्थ है? परमात्मा का कोई लिंग नहीं होता। न वह पुरुष है, न ही स्त्री, लेकिन साथ ही वह पुरुष भी है और स्त्री भी। अतएव पिता कहकर भी उसकी उपासना की जाती है तथा माता कहकर भी उसी की उपासना की जाती है। लेकिन यह अनुभव सिद्ध है कि मानव को माता का रूप अधिक सहज करुणामय एवं दयार्द्र लगता है। क्योंकि वह जन्म काल से ही माता के सान्निध्य में रहा है एवं उसने यह अनुभव किया है। अतएव मानव के लिए मातृशक्ति के रूप में ईश्वर-उपासना प्रेरक लगती है। क्योंकि माता अपने नैसर्गिक स्वभाव के कारण अत्यधिक वात्सल्यमयी और करुणामूर्ति रहती है। इसी तथ्य को संस्कृत में अत्यधिक सुन्दर ढंग से वर्णित किया गया है। माता के कृपालु स्वरूप का वर्णन अनेक संस्कृत शास्त्रों में होता है। उदाहरणस्वरूप जब रावण ने माता सीता का अपहरण कर अशोक वाटिका में रखा था, तो वहाँ की राक्षसियाँ रावण के आदेशानुसार माता सीता को नाना प्रकार से त्रास दिखाती थीं, तब वहाँ पर त्रिजटा नामक राक्षसी ने अपने रात को देखे हुए स्वप्न वृतान्त को माता सीता को बताते हुये कहा कि लंका में राक्षसों का अन्त निकट है। यह सुनकर सारी राक्षसियाँ भय से काँपने लगीं। उनकी इस मानसिक स्थिति को भाँपकर जगदम्बा सीता ने उन्हें अभय दान देते हुए कहा कि आप क्यों भयग्रस्त हो रही हैं, अगर ऐसी स्थिति बनी, तो मैं आपकी रक्षा करूँगी। आप लोग चिन्ता मत करिए। आप यह देख सकते हैं कि जो राक्षसियाँ माता सीता को भय दिखा रही थीं, उन राक्षसियों पर भी दया-भाव बरसानेवाली जगदम्बा जानकी का हृदय कितना उदार था ! यह मातृशक्ति की विशेषता है। रावण की मृत्यु के बाद जब हनुमानजी माता सीता को लेने आए, तभी उन राक्षसियों को देखकर उसे दंडित करने को ज्योंहि आगे बढ़े, तभी माता जानकी ने उन्हें रोक दिया एवं उन राक्षसियों के प्राणों की रक्षा की। इसमें हमें माता जानकी का सहज करुणामय दया-भाव देखने को मिलता है। इस प्रसंग से हम माँ के उच्च स्वरूप एवं माँ का हृदय कैसा होता है, इसका अनुभव कर सकते हैं। अत: ईश्वर का मातृस्वरूप जो शक्तितत्त्व के रूप में जाना जाता है, वह प्राणियों के लिए सहज ही आकर्षक और विविध बाधाओं से मुक्त करनेवाला होता है। इसलिए वासंतिक नवरात्र एवं शारदीय नवरात्र में शक्ति की उपासना का विधान भारतीय संस्कृति में किया गया है, जो सर्वथा युक्ति-युक्त है। यद्यपि परमात्मा का तत्त्व एक है। वह निर्गुण निराकार निरंजन है। वही अपनी त्रिगुणात्मक शक्ति से युक्त होकर जगत की सृष्टि, जगत का पालन तथा जगत का संहार भी करता है। इसलिए वह ब्रह्मा-विष्णु-महेश के रूप में त्रिमूर्ति को धारण करता है। इन्हीं तीन शक्तियों से सम्मलित होने पर उसे महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली के रूप में हम पहचानते हैं। अर्थात् ब्रह्माजी की शक्ति जिससे सृष्टि होती है, वह महासरस्वती है, विष्णु की शक्ति जो जगत का पालन करती है, वह महालक्ष्मी है और रूद्र की शक्ति जिससे संहार होता है, वह महाकाली है। ये तीनों शक्तियाँ मूल रूप में एक ही हैं। इस शक्ति की महत्ता को पूज्यपाद शंकराचार्य ने समझा और उन्होंने महाशक्ति की आराधना के लिये सौन्दर्य लहरी नामक अत्यन्त सुन्दर रचना की एवं इस बात को प्रमाणित किया कि शक्ति की उपासना मनुष्य के लिए अपरिहार्य एवं आवश्यक है। शंकराचार्य ने 'सौन्दर्य लहरी' में कहा – हे भवानी चार मुखवाले ब्रह्मा भी तुम्हारी महिमा को वर्णन करने में असमर्थ हैं। समस्त प्रजाओं के अधिपति विश्वेश्वर भी अपने पाँच मुखों से तुम्हारी महिमा का वर्णन नहीं कर सकते। शेषनाग अपने हजार फणों से भी तुम्हारी स्तुति करने में असमर्थ हैं, जब इतने बड़े-बड़े सामर्थ्यवान की सामर्थ नहीं है, तो मेरे जैसा अकिंचन तुम्हारी महिमा का वर्णन करने में सामर्थवान कैसे हो सकता है ! ○○○

पंजाबी साहित्यिक परम्परा में 'आदिग्रन्थ' का स्थान

ए.पी.एन. पंकज, चण्डीगढ़

असंख नाव असंख थाव।।
अगंम अगंम असंख लोअ, असंख कहहि सिरू भारू होइ।।
अखरी नामु अखरी सालहा,अखरी गिआनु गीत गुण गाह।।
अखरी लिखणु बोलणुबाणि, अखरा सरि संजोगु बखाणि।।
जिनि एहि लिखे तिसु सिर नाहि,जिव फुरमाए लिव लिव पाहि।।
जेता कीता तेता नाउ, विणु नावै नाही कोउ थाउ।।
कुदरत कवण कहा बीचारू, बारिआ न जावा एक बार।।
जोतुघु भावै साई भलीकार, तु सदा सलामति निरंकार।।[१]

–''तुम्हारे असंख्य नाम हैं, असंख्य धाम हैं। असंख्य लोक हैं, जिनकी थाह पाना असम्भव है। उनके लिये 'असंख्य' विशेषण देना भी संकोच का कारण बनता है। फिर भी अक्षरों और शब्दों द्वारा ही तुम्हारे नाम का जप किया जाता है, तुम्हारा गुणगान किया जाता है। शब्दों द्वारा, शब्दों के माध्यम से ही, हम तुम्हारे सम्बन्ध में लिखते और बोलते हैं। मनुष्य के भाल पर उसकी भवितव्यता शब्दों में ही अंकित की जाती है। पर जो उसका भाग्य-विधाता है, वह शब्दों के बंधन से परे है। उस परमेश्वर की जो रज़ा है, वही जीव को प्राप्त होता है। यह सारी सृष्टि उसके शब्द की ही अभिव्यक्ति है। उसके शब्द के प्रकाश के बिना कोई मार्ग नहीं देखा जा सकता। मेरे जैसा तुच्छ जीवन इस सृष्टि के विस्तार और आश्चर्य का वर्णन कैसे कर सकता है? मैं, क्षुद्र मनुष्य, तुम्हें क्या दे सकता हूँ? हे परमेश्वर! तुम्हारी आज्ञा का पालन करना ही मनुष्य की तुम्हारे प्रति सर्वश्रेष्ठ भेंट है। तुम सर्वसमर्थ, शाश्वत, निरंकार हो।''

शब्द का महत्त्व, शब्द की सीमाएँ

बाइबल में कहा गया है, ''आरम्भ में शब्द था, शब्द ईश्वर के पास था, शब्द ईश्वर था।''[२] हिन्दू परम्परा में शब्द ब्रह्म है। वेद, जो सम्पूर्ण ज्ञान के आदि स्रोत हैं, उन्हें ब्रह्म ही कहा जाता है। सूत्रों में निबद्ध संस्कृत वर्णमाला 'माहेश्वर सूत्र' कहलाती है। अंग्रेजी शब्द 'लैटर' का संस्कृत-हिन्दी पर्यायवाची 'अक्षर' है; अक्षर अर्थात् अक्षय, विकार रहित। इस शब्द से भी ब्रह्म का ही बोध होता है। जब अक्षरों का समूह, शब्द बनता है और उनके समुच्चय से वाक्य, अनुच्छेद, निबंध, गीत, कविता आदि बनते हैं, तो उनसे अर्थ, विचार, भाव और रस की सृष्टि होती है। इसे ही वाणी कहते हैं। वाणी अर्थात् सरस्वती, शारदा, ज्ञान, विज्ञान, व्यवहार और परमार्थ की मार्गदर्शिका, अधिष्ठात्री। इसी वाणी और विनायक – गणेश की उपमा के साथ गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस का मंगलाचरण करते हैं :

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।[३]

यही वह अक्षर है, जिसका प्रसादन वैदिक ऋषि भी करते हैं। वेद का एक मंत्र कहता है कि उस व्यक्ति के लिये कोई भी ऋचा सार्थक नहीं हो सकती, जो इस अक्षर को नहीं जानता। परम व्योम में अवस्थित इस अक्षर को जो जान लेता है, वह परिपूर्ण हो जाता है। यहाँ जिस परम व्योम का उल्लेख किया गया है। उस आकाश का भी गुण शब्द ही है –

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किं ऋचा करिष्यति
य एतद्विदुस्त इमे उपासते।।[४]

पार्वती और शिव की जगज्जननी और जगत्पिता के रूप में वन्दना करते हुए महाकवि कालिदास ने उन्हें वाणी और अर्थ की भाँति अभिन्न कहा है –

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।[५]

यह शब्द, यह अक्षर ही गुरबाणी (गुरुवाणी) के, आदि ग्रन्थ के 'अक्खर' 'आखर', 'शब्द' इत्यादि के द्वारा अभिहित होता है। यही गुरुनानक (१४६९-१५३९) का शबद है, जो उन्हें परम गुरु ईश्वर से प्राप्त हुआ और जिसे उन्होंने एक परम्परा के रूप में अपने उत्तराधिकारियों और अनुयायिओं को प्रदान किया। यद्यपि वे स्वीकार करते हैं कि शब्दों के द्वारा उस अगाध तत्त्व – परम तत्त्व – का वर्णन सम्भव नहीं है, फिर भी वे उसके नाम का, उसकी महिमा का उल्लेख करने के लिए शब्द का ही आश्रय लेते हैं।''

''शब्दों और अक्षरों द्वारा तुम्हारा नाम जपा जा सकता है, तुम्हारी स्तुति की जा सकती है।'' वे स्वीकार करते हैं कि ईश्वर जो नियति का लेखक है, स्वयं शब्दों के बंधन से परे है, पर इन्हीं शब्दों के द्वारा वे उसका स्तवन भी करते हैं, जगत में अपने संदेश का प्रसार भी करते हैं।

परन्तु शब्द ही पाषण्ड और वितण्डा की भी अभिव्यक्ति करता है। आचार्य शंकर ने कहा है, ''शब्दजाल चित्त को भटकानेवाला घोर वन है'' – **शब्दजालं महारण्यं चित्त-भ्रमण-कारणम्**।[६] गीता में श्रीकृष्ण 'पुष्पिता वाणी' और 'वेदवाद' कहकर इस की भर्त्सना करते हैं।[७]

इसी सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए गुरुनानक कहते हैं कि जो लोग स्मृतियों और शास्त्रों का व्याख्यान करते हैं, वेदों और पुराणों का पाठ करते हैं, पर मन में कपट भरा रहता है, उन लोगों के निकट राम कभी भी नहीं आते –

सिम्रति सासत्र करहि वखिआण।।
नादी बेदी पढ़हि पुराण।।
पाखंड द्रिसटि मन कपट कमाहि।।
तिन कै रमईआ नेड़ि नाहि।।[८]

तो फिर शब्द तथा उसके द्वारा प्राप्त ज्ञान का महत्त्व क्या है? आदि ग्रंथ का प्रारम्भ अक्षर के साथ होता है – अक्षर जिसमें सभी भाषाएँ और सभी दिव्य तत्त्व समाहित हैं। यह अक्षर – पंजाबी में अक्खर – ओम्, केवल ओम् है। गीता में इसे एकाक्षर ब्रह्म – **ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म** (८.१३) कहा गया है। उपनिषद् का आदेश-वाक्य है – **ओमित्येदक्षरं उद्गीथं उपासीत**।[९] इस ओम् अक्षर की उपासना करनी चाहिए। इस अक्षर ब्रह्म – एक ओंकार की सारगर्भित व्याख्या आदि ग्रन्थ में निम्नलिखित प्रकार से की गई है –

सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरू ।
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।।[१०]

एकमात्र सत्य परमात्मा का नाम है। वही सारी सृष्टि का रचयिता परम पुरुष है। वह निर्भय है, निर्वैर है, उसका स्वरूप कालातीत है। वह अयोनिजन्मा है, स्वयंभू है। गुरु की कृपा से ही मनुष्य को उसके ज्ञान की उपलब्धि हो सकती है।

गुरुओं और भगतों की 'बाणी'

आदि ग्रन्थ में नानक ने अन्यत्र कहा है कि यदि गुरु के शब्द पर ध्यान नहीं दिया और सांसारिक प्रलोभनों में जीवन व्यर्थ कर दिया, तो तुम्हारा जीवात्मा ऐसे जलेगा जैसे तपते तेल में शरीर। सद्गुरु के मुँह से निकला शब्द सामान्य सम्प्रेषण नहीं होता। यह 'शबद' – शब्द ब्रह्म अथवा मंत्र – परमतत्त्व का शब्दावतार होता है। गुरुनानक 'गुरु' अथवा 'सतिगुरु' (सद्गुरु) का प्रयोग स्वयं परमात्मा के लिये करते हैं। ईश्वर ही सर्वोपरि आचार्य है। सिख सिद्धान्तों के अनुसार परमेश्वर निराकार है। पर निराकार होते हुए भी वह गुरु और उसके शब्द में प्रकट होता है; शब्द, जिसके माध्यम से गुरु उस अविज्ञेय तथा अपरिभाष्य ब्रह्म का बोध अपने 'सिख' (शिष्य) को कराता है। आदिकाल से ही भारतीय परम्परा में गुरु तथा उसके शब्दों के प्रति श्रद्धा और सम्मान का आत्यन्तिक भाव रहा है। बार-बार इस बात पर बल दिया गया है कि अध्यात्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिये शिष्य को श्रद्धापूर्वक गुरु की शरण में जाना चाहिए। इसके साथ ही यह भी कहा गया है कि गुरु होने का अधिकारी वही है, जो स्वयं श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ और तत्त्वदर्शी हो, अकामहत (सांसारिक विषयों से रहित) हो।[११]

श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ''गुरु मानो मध्यस्थ है। जैसे मध्यस्थ प्रेमिक को प्रेमिक के साथ मिला देता है, वैसे ही गुरु भी साधक को इष्ट के साथ मिला देता है।'[१२]

ऐसे ही वाणी-शब्दों, सलोकों, पदों, छंतों, पउड़ियों तथा अन्य काव्य-विधाओं का आदिग्रन्थ एक महान संग्रह है। इसमें सात गुरुओं तथा उनतीस भगतों की रचनाएँ सम्मिलित हैं। इसे 'ग्रन्थ साहिब' का नाम सिखों के दशम गुरु श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी द्वारा दिया गया था। उन्होंने अपने पिता, नवम गुरु श्री तेगबहादुर जी की तथा अपनी बाणी इसमें सम्मिलित करके इसे अन्तिम तथा सुनिश्चित रूप प्रदान किया तथा सन् १७०७ ई. में इसे शाश्वत और जीवित गुरु के रूप में, गुरु-गद्दी पर प्रतिष्ठित किया। इससे पहले पाँचवें गुरु श्री अर्जनदेव ने पहले पाँच गुरुओं – नानक, अंगद, अमरदास, रामदास की तथा स्वयं अपनी बाणी के साथ उनतीस संतों, जिन्हें भगत कहा जाता है, की बाणी

का संग्रह इसमें किया था। इन उनतीस भगतों में से १५ गुरुनानक के पूर्ववर्ती तथा शेष समकालीन थे। ये भगत और भाट सन्त समाज के विभिन्न वर्गों, जातियों सम्प्रदायों तथा धर्मों के अनुयायी एवं देश के विभिन्न भागों से संबद्ध, भिन्न भाषाओं/बोलियों के बोलनेवाले थे। इस प्रकार गुरु ग्रंथ साहिब की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता इसका अखिल भारतीय स्वरूप भी है।

ग्रंथ साहिब तथा पंजाबी साहित्यिक परम्परा

पंजाबी साहित्यिक परम्परा की मूल प्रकृति को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि गुरु गोविन्द सिंह ने आदिग्रन्थ को अन्तिम गुरु के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए यह आदेश दिया था कि यह एक दिव्य कृति है तथा सिखों को अपने सभी आदेश – लौकिक और आध्यात्मिक – इसी से ग्रहण करने होंगे। यह सत्य है कि अन्य भाषाओं के साहित्य की भाँति पंजाबी भाषा में भी लौकिक साहित्य विद्यमान है, पर उसके शब्द-भंडार, मुहावरों, शैली तथा मूल-प्रेरणा का स्रोत आदिग्रन्थ ही है। कालक्रम की दृष्टि से आदि ग्रंथ का विस्तार लगभग पाँच शताब्दियों में समाहित है। इसमें शेख फ़रीद (११७३-१२६५) से आरम्भ होकर अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक की रचनाएँ सम्मिलित हैं।

जपु जी[१३] गुरुनानक की बाणी है। यह आदि सचु से प्रारम्भ होती है। यह सिखों की प्रात:कालीन प्रार्थना है। इसके बाद सबसे महत्त्वपूर्ण सुखमनी साहिब (पृष्ठ २६२-९६) है। इसके रचयिता पाँचवें गुरु अर्जनदेव हैं। संख्या की दृष्टि से ग्रंथ साहिब में सबसे अधिक योगदान (२२१८ रचनाएँ) उन्हीं का है। यह सम्पूर्ण संग्रह का लगभग एक-तिहाई भाग है। ह्यु मॉकलिओड के अनुसार सुखमनी सिख गुरुओं के उपदेश का सार है। इसके कुल २४ पद हैं। सुखमनी का आरम्भ करते हुए गुरु अर्जन ने स्वयं कहा है कि यह भक्तजनों के मन को विश्राम देनेवाली, प्रभु के आनन्दमय नाम की अमृतमयी वाणी है –

सुखमनी सुख अंम्रित प्रभु नामु।
भगत जना के मन विश्रामु।।[१४]

इसका उपसंहार करते हुए गुरुजी कहते हैं कि जिसके मन में यह बस जाती है, जो इसे मनोयोगपूर्वक सुनता है, उसके हृदय में हरि निवास करते हैं ... वह सर्वोच्च शोभा को प्राप्त करता है। इतने गुणों से सम्पन्न यह सुखमनी – सुख की मणि है –

जिस मन बसै लाए प्रीति।।
तिस जन आवै हरि प्रभु चीति।। .....
समते उच ता की सोभा बनी ।।
नानक इह गुणि नाम सुखमनी।।१५

नाम सिमरन : स्मरण भक्ति

सिमरन – नाम स्मरण को आदिग्रंथ में सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। यह महत्त्व पूरे ग्रंथ में प्रति ध्वनित होता है। मॉकलिओड कहते हैं, "नाम का तात्त्विक अभिप्राय समस्वरता – हारमॅनी – है। इसके अनुशासन में रहते हुए भक्त निरन्तर ईश्वरीय समरसता की ओर अग्रसर होता है"[१६]

"सभी सन्त, कवि नाम-निष्ठा तथा नाम-जप, गुरु-भक्ति और सत्संग के महत्त्व पर बल देते हैं। नाम, दिव्य-गुरु तथा सत्संग संत-साधना के तीन स्तम्भ हैं।"[१७]

गुरु ग्रंथ साहिब के सिद्धान्त भी मुख्यत: इस उक्ति के अनुरूप ही हैं।

रहिरास सन्ध्याकालीन पाठ है। इसके नौ अंश हैं। पहले भाग में, जिसका प्रारम्भ 'सो दरु' से होता है, पाँच पद हैं और दूसरे में, जो 'सो पुरखु' से प्रारम्भ होता है, चार पद।[१८] सो दरु के पहले तीन पद गुरुनानक की रचनाएँ हैं, चौथा गुरु रामदास द्वारा विरचित है, पाँचवा गुरु अर्जन द्वारा। सो पुरुखु की पहली दो रचनाएँ गुरु रामदास की हैं, तीसरी गुरुनानक की और चौथी गुरु अर्जन की।

इसके पश्चात सोहिला (पृष्ठ १२-१३) है, इसका पाठ सोते समय अथवा अन्तिम संस्कार के समय किया जाता है। आनन्द साहिब (पृष्ठ ९१७-२२) गुरु रामदास की कृति है। अपने नाम के अनुरूप ही यह उत्सव-गान है। पहले चार छंत (छंद) क्रमश: हरि पहिलड़ी, हरि दूजड़ी, हरि तीजड़ी और हरि चौथड़ी शब्दों के साथ प्रारम्भ होते हैं। सिखों का विवाह-संस्कार (आनन्द कारज) इसी के साथ सम्पन्न होता है। वर-वधू चार बार गुरुग्रंथ साहिब की प्रदक्षिणा करते हैं। इस प्रदक्षिणा को 'लाव' कहा जाता है। इस प्रदक्षिणा के दौरान उपरोक्त चार छंतों को समूह गान के रूप में अधिकृत रागी – भाई के नेतृत्व में गाया जाता है।

सिख-सिद्धान्त के वेदव्यास

गुरु अर्जन को यदि सिख-सिद्धान्त का वेदव्यास कहा जाए, तो यह अत्युक्ति नहीं होगी। आदिग्रंथ को संहिताबद्ध करने का कार्य उन्होंने कुछ-कुछ वैसा ही किया जैसाकि व्यासदेव ने वेदों को ग्रथित करने में किया था। गुरु अर्जन

का यह कार्य न केवल बृहत् था, अपितु कठिन भी। उन्होंने बाणी को प्राप्त करने के लिये अनेक स्रोतों – स्थानों और व्यक्तियों की खोज की। बाणी को इकट्ठा करने के लिये जगह-जगह अपने प्रतिनिधि भेजे। कई जगह स्वयं भी गए। ''तीसरे गुरु अमरदास (निधन १५७४) के समय पहले तीन गुरुओं तथा अन्य सन्तों, सूफ़ियों की ऐसी बाणियों का संग्रह हो गया था, जो गुरु नानक के सिद्धान्तों के अनुसार था।''[१९] कहा जाता है कि गुरु नानक ने अपनी उदासियों (यात्राओं) के दौरान शेख़ फ़रीद की वाणी का संग्रह स्वयं कर लिया था और उसे दूसरे गुरु अंगद को सौंप दिया था। यहाँ यह कहना प्रासंगिक नहीं होगा कि जिन भगतों की बानी आदि ग्रंथ में संगृहीत है, उनमें कबीर के बाद सबसे अधिक संख्या (चार सबद और ११२ सलोकु) फरीद की रचनाओं की ही है। यह भी उल्लेखनीय है कि इनमें से १८ सलोकु गुरुओं के सलोकों के बीच-बीच, मानो संवाद की तरह, संकलित हैं। उदाहरणार्थ –

फ़रीद :

फ़रीदा कालीं जिनी न राविआ धउली रावै कोइ।।
करि साईं सिउ पिरहड़ी रंग नवेला होइ।।

''जब तुम्हारे केश काले थे, अर्थात् जब तुम जवान थे, तब तुमने ईश्वर से प्रेम नहीं किया। अब जब तुम्हारे बाल सफ़ेद हो गए, अर्थात् तुम बूढ़े हो गए हो, तुम क्या पाना चाहते हो? अब भी समय है, यदि तुम मालिक से प्रेम करते हो, तो तुम पुन: रंग को (परमात्मा को) पा लोगे।

गुरु अमरदास –

फ़रीदा काली घउली साहिबु सदा है जो कि चिति करै।।
आपणा लाइआ पिरमु न लगई जो लोचै लभु कोइ।।
एहु पिरमु पिआला खसम का जो भावै तै दइ।।

''ओ फ़रीद ! यदि कोई मालिक से प्रेम करता है, तो इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि बाल काले हैं या सफ़ेद (व्यक्ति जवान है या बूढ़ा)। ललक चाहे कितनी भी क्यों न हो, हर किसी को उस परमात्मा के प्रेम की उपलब्धि नहीं होती। वह जिसे चाहता है, वही उसका पात्र बनता है।''[२०]

फ़रीद-बाणी का उपरोक्त संग्रह गुरु अमरदास जी के पुत्र भाई मोहनदास के पास था। वे इसे सौंपने को तैयार नहीं थे। गोपाल सिंह के कथनानुसार मोहनदास को मनाने के लिये पाँचवें गुरु को बहुत प्रयास करना पड़ा। बाणी को लाने के लिये पहले उन्होंने भाई गुरुदास को भेजा, फिर बाबा बुड्ढ़ा जी को। उनके असफल रहने पर गुरु जी स्वयं गए और बहुत मनाने के बाद वे इस बाणी को प्राप्त करने में सफल हुए।

गुरु अर्जन ने देश भर के विभिन्न संप्रदायों के संतों और भगतों को खुला निमन्त्रण इस आग्रह के साथ भेजा कि वे अपने-अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों की रचनाएँ भेजें। उन्होंने सभी धार्मिक संप्रदायों और भाषाओं की ऐसी प्रतिनिधि रचनाएँ हासिल करने का प्रयास किया, जो सिख सिद्धान्तों के अनुकूल भी हों।[२१]

गुरुजी के निमन्त्रण के प्रत्युत्तर में उनके कई समवर्ती स्वयं गुरु जी के पास आए और उन्हें अपने पूर्वज गुरुजनों की रचनाएँ सुनाईं।

इस प्रकार साहित्य का एक प्रचुर भंडार तो गुरु अर्जनदेव को प्राप्त हो गया, पर इससे भी कठिन कार्य था, उसमें से उपयुक्त सामग्री को चुनना। और भी अधिक समस्या रचनाओं को अस्वीकृत करने की थी। ऐसा करने में कुछ लोगों के नाराज हो जाने की भी संभावना थी।

ऐसा कहा जाता है कि जब गुरुजी को पता चला कि गुरुनानक की रचनाओं का एक भाग सिंहल द्वीप (श्री लंका) में सुरक्षित है, तब उन्होंने अपने एक शिष्य को उसे लाने के लिये वहाँ भेजा। उस ज़माने में जब कि यातायात और संचार के साधन अत्यन्त दुर्लभ थे और सैंकड़ों मील की यात्रा जोखिम-भरी थी, यह कार्य कितना चुनौतीपूर्ण रहा होगा, आज यह सोचना भी कठिन है। पर जब यह संग्रह – प्राण संगली – लेकर शिष्य लौटा, तो गुरुजी ने उसकी प्रामाणिकता को संदिग्ध समझते हुए उसे अस्वीकृत कर दिया। अब यह रचना उस संकलन का अंश है, जिसे 'कच्ची बाणी' कहा जाता है। कच्ची बाणी अर्थात् अपुष्ट रचनाएँ। गोपाल सिंह कहते हैं कि जो बाणी गुरमत – गुरु के सिद्धान्त के अनुरूप नहीं थी, भले ही भाषा-शैली की दृष्टि से गुरु-बाणी जैसी ही प्रतीत होती हो, उसे अस्वीकृत कर दिया गया था।

यदि रचनाओं का संग्रह और चुनाव कठिन और विस्मयकारी था तो उन्हें विशिष्ट रूप से उपयुक्त शीर्षकों सहित संहिताबद्ध करना भी कुछ कम चुनौतीपूर्ण नहीं था। इतने विशाल संग्रह को लिखनेवाला कौन हो? भाषा के महत्त्व को ध्यान में रखना भी आवश्यक था। गुरुओं और भगतों की रचनाएँ मुख्यत: मौखिक परम्परा द्वारा प्रचलित

हुई थीं। इस प्रसार और विकासक्रम में रचनाकार स्वयं तो भिन्न प्रदेशों के निवासी अथवा यात्री रहे ही थे, उनकी रचनाएँ अन्य गायकों के यात्राक्रम में भी स्थानीय सुगंध ग्रहण करती रही थीं और उनके एकाधिक पाठ प्रचलन में आ गए थे। उदाहरणार्थ, आदिग्रंथ के भगतों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कबीर की बाणी है। इसका प्रभाव भी गुरुनानक पर सर्वाधिक है। Winand M.Callewart ने उस बाणी की ग्यारह पांडुलिपियों का उल्लेख किया है। इनमें से दो आदिग्रंथ से पहले की हैं और शेष बाद की। इनमें न केवल पदों की संख्या में, अपितु पाठ में, भाषा में भी अन्तर है। इतना ही नहीं, इनमें से कुछ की प्रतिलिपियों के संस्करण भी अलग-अलग हैं।[२२] ऐसा ही कुछ कम परिमाण में अन्य भगतों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है।

आदिग्रंथ के राग और गायकी

संकलनकर्ता के लिये जहाँ एक ओर यह आवश्यक था कि गुरुओं द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के अन्तर्गत ही वह अपने कार्य का निष्पादन करे, वहाँ दूसरी ओर उसे यह भी सुनिश्चित करना था कि मूल रचना की विषय-वस्तु, उसका स्वरूप और रस भी अक्षुण्ण रहें। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक नहीं है कि जहाँ सभी गुरु खत्री वर्ग के थे, वहीं उनके अधिकतर अनुयायी जाट थे। सम्भवत: इसी बात को ध्यान में रखते हुए गुरु अर्जन के लिये यह आवश्यक था कि वे भगतों की बाणी अपने जाट अनुयायियों की प्रचलित भाषा में निबद्ध करें।

संग्रह के पाठ को लिखने के लिए गुरु जी ने भाई गुरदास (निधन १६३७ ई.) को चुना। भाई गुरुदास महान् गुरु-भक्त थे। उनकी शिक्षा गुरु अमरदास जी तथा दीक्षा गुरु रामदास जी द्वारा हुई थी। वे एक निष्णात कवि तथा गुरमत के प्रचारक थे। उन्होंने कई वर्षों तक पंजाब, काबुल और काशी में धर्मप्रचार किया था। चार वर्ष तक अमृतसर में रहते हुए वे आदिग्रंथ का लेखन कार्य करने के साथ-साथ हरिमंदिर साहिब और अकाल तख्त के निर्माण में सहायता करते रहे थे। गुरु अर्जन ने भाई गुरदास से कहा था। वे अपने द्वारा विरचित वार[२३] भी संकलन में शामिल करें, पर उन्होंने विनम्रतापूर्वक यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया था कि वे गुरुओं के समकक्ष होने का सम्मान पाने के अधिकारी नहीं हो सकते।[२४]

जैसा कि पहले कहा गया है, आदि ग्रंथ में जिन रचनाओं का चयन संकलन के लिए किया गया था, उनमें अधिकतर मौखिक परम्परा से प्राप्त हुई थीं। इसे देखते हुए उचित समझा गया कि उन्हें उनके सांगीतिक रूप के उपयुक्त रागों के अन्तर्गत निबद्ध किया जाए, न कि उनके विषय अथवा कालक्रमानुसार। ऐसा इसलिए कि गायकों ने उनका संयोजन रागों के अनुरूप ही किया था। कालवार्ट द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार गुरुग्रंथ साहिब की रचनाएँ कुल ३१ रागों के अन्तर्गत संगृहीत हैं।[२५] उन्होंने यह भी कहा है – ''पहले तो गायक रचना को एक राग विशेष में प्रस्तुत करता था और फिर ...उसी राग के अन्तर्गत जो अन्य रचनाएँ थीं, उन्हें एक समूह के रूप में शामिल कर लिया जाता था। रचनाओं के वर्गीकरण के लिए यह एक सुस्पष्ट विधि थी। इसके परिणामस्वरूप प्राचीन काल से ही राग ही मौखिक परम्परा के विशिष्ट पहचान-पत्र जैसे बन गए थे।

एक ही रचना को विभिन्न रागों में गाया जा सकता था। इस प्रकार अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग पांडुलिपियों का वर्गीकरण अलग-अलग रागों में कर दिया गया था। स्पष्टत: ऐसा किसी लिपिक के हस्तक्षेप से नहीं, अपितु मौखिक परम्परा के चलते सम्बन्धित गायकों द्वारा किया गया होगा। जब गुरु अर्जन ने १६०४ ई. में गुरुओं और भगतों की बाणी का संकलन किया, तो उन्होंने उसी समय प्रत्येक रचना का मानकीकरण एक राग विशेष के अन्तर्गत कर दिया। इस प्रकार नामदेव, कबीर और रविदास की रचनाओं की संरचनाओं की तुलना यदि आदि गुरुग्रंथ के लिए सुनिश्चित रागों और राजस्थानी संग्रहों के बीच करें, तो दोनों में बहुत अन्तर पायेंगे। पंजाबी गायक जिस पाठ का उपयोग करते थे, वे राजस्थानी गायकों से न केवल रूपाकार की दृष्टि से अपितु गायकी की दृष्टि से भी अलग था।''(II१६)

संख्या की दृष्टि से ग्रंथ में जिन रागों का उपयोग सबसे अधिक हुआ है, उनके नाम और शब्द संख्या इस प्रकार हैं : आसा ३६५; सिरी २००, बिलावल १९०, सारंग १७७ तथा मारू १६०। आदिग्रंथ के रागों की एक विशेषता यह भी है कि वे हमारे देश के अलग-अलग प्रदेशों, लोक-शैली और ऋतुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

ग्रंथ साहिब में प्रत्येक राग के शीर्षक के अन्तर्गत सात गुरुओं की रचनाएँ उनके कालक्रमानुसार दी गई हैं। सभी रचनाएँ 'नानक' के नाम से संकलित हैं। गुरु विशेष की पहचान के लिए महला शब्द का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार गुरुनानक की रचनाओं के लिये महला[१], गुरु अंगद के लिए महला[२], गुरु अमरदास के लिये महला[३] इत्यादि।

सात गुरुओं के अतिरिक्त नानक उपनाम का प्रयोग करने का सम्मान केवल प्रथम गुरु के प्रिय गायक शिष्य मरदाना को प्राप्त हुआ है। मरदाना की तीन रचनाएँ ग्रंथ में हैं। अन्य भगतों की बाणी सम्बन्धित रागों में गुरुओं की बाणी के पश्चात् दी गई है, पर ऐसा किसी कालक्रम अथवा विकास-प्रक्रिया को ध्यान में रखकर नहीं किया गया। कुछ ऐसी रचनाएँ भी हैं, जिन्हें रागों के अन्तर्गत संयोजित नहीं किया गया। वे ग्रंथ के आरम्भ अथवा अन्त में दी गई हैं। उदाहरणार्थ जपु जी को मूलमंत्र के तुरन्त पश्चात् दिया गया है तथा वह किसी राग विशेष के अन्तर्गत नहीं है।

गुरुग्रंथ साहिब के १४३० पृष्ठ हैं। यह संख्या अलंघ्य है तथा छोटे, मध्यम, बड़े सभी संस्करणों में समान है। अन्तिम ७८ पृष्ठों (१३५३-१४३०) में विभिन्न काव्य-विधाओं-सलोक, गाथा, फुन्दे, चौबेले, सवैये, वार और मुंदावनी के अन्तर्गत प्रकीर्णक हैं। रागमाला में ग्रन्थ के रागों की परिगणना है, पर यह रागों के क्रम में नहीं है।

नौवें गुरु श्री तेज बहादुर द्वारा विरचित ५६ सलोकों में उनकी अद्‌भुत काव्य प्रतिभा तथा भाषा की सरलता के दर्शन होते हैं। औरंगजेब के बंदीगृह में रहते हुए उनके द्वारा अभिव्यक्त उद्‌गार अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं –

बल छुटकियो बंधन परे कछून होत उपाइ।।
कहु नानक अब ओट हरि गज जिउ होइ सहाइ।।
संग सखा सभि तजि गए कोउ न निबहिओ साथि।
कहु नानक इह बिपति में टेक एक रघुनाथि।।[२६]

''मेरा बल नष्ट हो गया है, बंधन में जकड़ा हुआ मैं असहाय, निरुपाय हो गया हूँ। नानक कहते हैं कि अब केवल हरि का ही आश्रय है। वे ही रक्षा करेंगे जैसे उन्होंने गजेन्द्र की की थी'।

''सभी संगी-साथी मुझे छोड़ गए हैं। किसी ने भी साथ नहीं निभाया। नानक कहते हैं कि इस विपत्ति में केवल रघुनाथ (श्रीराम) का ही आश्रय है।'' **(अगले अंक में समाप्त)**

अन्त्य संकेत तथा सन्दर्भ – १. आदि ग्रन्थ, जपु जी साहिब, १९ **२.** जॉन, १.१ **३.** बालकांड, मंगलाचरण, श्लोक १ **४.** ऋग्वेद १,१६४,३९ **५.** रघुवंश१.१। गोस्वामीजी ने भी श्रीसीताराम जी की वन्दना इसी प्रकार करते हुए कहा है : गिरा अरथ जल बीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न । बंदऊँ सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न।। (रामचरित मानस, बालकांड १८) **६.** विवेक चूड़ामणि ६२ (गोरखपुर, गीताप्रेस-पाठ) **७.** भगवद्‌गीता २.४२ **८.** आदिग्रन्थ, पृष्ठ ११६९ **९.** छान्दोग्य उपनिषद १.१.१ **१०.** आदिग्रन्थ : मूलमंत्र **११.** देखें मुण्डकोपनिषद १.२.१२., गीता ४.३४, विवेक-चूड़ामणि ३४-३६ **१२.** अमृतवाणी (श्रीरामकृष्ण के उपदेशों का संग्रह) पृष्ठ १६४, सं.६९ **१३.** गुरुग्रन्थ साहिब, जपुजी, पृ. १-८ **१४.** वही, पृष्ठ २,६२, **१५.** वही, पृष्ठ २९६ **१६.** ह्यु मॅकलिओड, Sikhism (A Cultural History of India, Ed.A.L.Bosham, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड, १९९८) पृष्ठ २९८ **१७.** शार्लाट, वॉटविले, Sant mat (Sant Studies in a Devotional Tradition of India, Ed. Karine Schomer and W.H. Meleod. Delhi, Motilal Banarsidass, १९८७) पृष्ठ ३१ **१८.** ग्रंथ साहिब, पृष्ठ ८-११ **१९.** Sikhism, पृष्ठ २९८ **२०.** ग्रंथ साहिब, पृष्ठ १३७८. शेख़ फरीद, जिन्हें पंजाबी साहित्य का चौसर (अंग्रेजी कवि, १३४२-१४०० ई.) कहा जाता है, के जीवन और काव्य के लिये देखें, प्राणनाथ पंकज : बोलै शेख़ फ़रीद । (नई दिल्ली, रूपा एंड कं. २००२) **२१.** देखें, गोपाल सिंह, 'आदि ग्रंथ ते उस दा परभाव पंजाबी बोली उत्ते' (पंजाबी साहित दा इतिहास, सं. सुरिंदर सिंह कोहली, चंडीगढ़, पंजाब यूनिवर्सिटी, १९७३), १.२८५.७। इसका संक्षेपण तथा पंजाबी उद्धरणों का अनुवाद लेखक द्वारा। **२२.** Winand M.Callewaert तथा अन्य The millenium Kabir Vani (New Delhi, Manohar, 2000). **२३.** वार पंजाबी-काव्य के वीर-काव्य की एक विधा है। गुरुनानक ने इसकी परिधि को विस्तृत करके इसके अन्तर्गत शान्त रस की रचनाएँ भी शामिल कर दी थीं। **२४.** देखिए, तरलोचन सिंह, 'भाई गुरुदास' (पंजाबी साहित दा इतिहास, पृ. ३३९ **२५.** Winand M.Callewaert : Sri Guru Granth Sahib, Vol.II (दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास १९९६) पृष्ठ १७-१८ **२६.** ग्रंथ साहिब, पृष्ठ १४२९. गजेन्द्र : देखें श्रीभागवत, अष्टम स्कन्ध, अध्याय २ से ४

कविता

छाई है छठ की छटा

– श्रीधर द्विवेदी

छाई है छठ की छटा, नदी नद तीर आज,
ले रहे आदित्य अर्घ्य, अस्ताचलगामी हैं।
नारी-नर नीर बीच, खड़े तप मौन साध
देते प्रदक्षिणा सात, सूर्य के प्रणामी हैं।
आस्था अद्‌भुत अपार, लहरे ज्यों पारावार,
ओढ़ें हैं दुकूल लोग देखो राम नामी हैं।
दूर दुर्विचार सभी, कलुष-विकार नहीं,
छठ व्रत निष्ठा में इष्ट प्रिय कामी हैं।।

मन्दिर शताब्दी विशेष

छत्तीसगढ़ का शिवरीनारायण मन्दिर

डॉ. प्रदीप कुमार शर्मा

(इस वर्ष २०२४ में स्वामी विवेकानन्द और स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज की बेलूड़ मठ स्थित मन्दिर स्थापना की शताब्दी के उपलक्ष्य में मन्दिरों से सम्बन्धित आलेख-शृंखला प्रकाशित की जा रही है।)

शबरी की भक्ति-गाथा

भक्त नाभादासरचित भक्तमाल में एक प्रसंग आता है, जिसमें भगवान् श्रीरामचन्द्र जी अपनी एक भक्त माता शबरी के हाथों बेर खाते हैं। शबरी का भक्ति-साहित्य में अद्वितीय स्थान है। रामायण के अरण्यकाण्ड में उल्लेख मिलता है कि शबरी के देह त्यागने के बाद भगवान श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजी ने उनका अन्तिम संस्कार किया था। पौराणिक सन्दर्भों के अनुसार शबरी एक भीलनी अर्थात् भील जाति की कन्या थीं। उनका मूल नाम श्रमणा था। उनके पिता अज भीलों के मुखिया थे। माताजी का नाम इन्दुमति था। ये भील जाति से सम्बन्धित शबर समाज के थे। कहा जाता है कि श्रमणा बचपन में प्राय: वैराग्य की बातें किया करती थीं। उनके माता-पिता ने जब यह बात एक पण्डितजी को बतायी, तो उन्होंने सलाह दी कि इसका विवाह करा दीजिए।

शबरी का विवाह एक भीलकुमार से निश्चित कर दिया गया। परम्परानुसार विवाह से पहले सैकड़ों पशु वध के लिये लाये गये। इसे देखकर शबरी बहुत दुखी हो गयी। परम्परा के अनुसार तत्कालीन भील समाज में किसी भी शुभ अवसर पर पशुओं की बलि दी जाती थी, लेकिन शबरी को पशु-पक्षियों से बहुत स्नेह था। इसलिए पशुओं को बलि से बचाने के लिए शबरी ने विवाह नहीं किया और विवाह से एक दिन पहले ही घर से भागकर दण्डकारण्य चली गयी।

दण्डकारण्य में ऋषि मतंग तपस्या कर रहे थे। शबरी उनकी सेवा करना चाहती थी। तत्कालीन समाज में व्याप्त जाति-प्रथा के अनुसार भील जाति की होने के कारण उसे संशय था कि शायद उसे सेवा का अवसर न मिले। फिर भी वह सुबह-सुबह ऋषि मतंग के सोकर उठने से पहले ही उनके आश्रम से नदी के तट तक का रास्ता झाड़ू से बुहार कर साफ कर देती थी। वह यह काम ऐसे करती थी कि किसी को पता ही नहीं चलता था। एक दिन ऋषि मतंग को पता चल गया कि शबरी वर्षों से नि:स्वार्थ भाव से उनकी सेवा कर रही है, तो वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे अपने आश्रम में शरण दे दी।

शबरी के काम से खुश होकर मतंग ऋषि ने उन्हें अपनी बेटी मान लिया था। समय के साथ मतंग ऋषि का शरीर बूढ़ा हो गया था। एक दिन मतंग ऋषि ने शबरी को अपने पास बुलाया और कहा, 'पुत्रि ! मैं अपना देह-त्याग कर रहा हूँ। बहुत वर्ष हो गये, इस शरीर में रहते-रहते।' तब शबरी ने कहा, 'गुरुदेव ! आपके बिना मैं अकेले जीकर क्या करूँगी? इसीलिए मैं भी अपना देहत्याग दूँगी।' तब मतंग ऋषि ने कहा, 'एक दिन तुम्हारे पास भगवान श्रीराम स्वयं चलकर आयेंगे। वही तुम्हें मोक्ष देंगे। तब तक तुम यहीं उनकी प्रतीक्षा करो।' ऐसा कहकर मतंग ऋषि ने अपना देह-त्याग दिया।

उसी दिन से शबरी प्रतिदिन भगवान् श्रीराम की राह देखती थी। नित्य अपनी कुटिया के बाहर बैठकर श्रीराम के आने की प्रतीक्षा करती थी। ऋषि मतंग त्रिकालदर्शी थे। इसलिये वे भविष्य की बात पहले ही जान चुके थे। भक्त माता शबरी ने अपने गुरुदेव ऋषि मतंग की बात गाँठ बाँधकर रख ली। प्रतिदिन सुबह उठकर अपनी झोपड़ी की अच्छे से लिपाई-पोताई कर रास्ते में फूल बिछाकर दरवाजे के बाहर श्रीराम की प्रतीक्षा करती थीं। यह क्रम एक-दो या कुछ सप्ताह-महीने नहीं, बल्कि वर्षों तक चला। माता शबरी कभी निराश नहीं हुईं। उन्होंने अपना पूरा जीवन भगवान् श्रीराम की प्रतीक्षा में बिता दिया। उन्हें अपनी गुरुदेव की बात पर पूरा विश्वास था कि श्रीरामचन्द्र जी उसकी झोपड़ी में अवश्य आयेंगे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जब ऋषि मतंग ने परलोकगमन किया, तब शबरी महज दस वर्ष की थी। उस समय राजा दशरथ का कौसल्याजी से विवाह तक नहीं हुआ था।

कालान्तर में अपने पिता के आदेश का पालन करते हुए भगवान् श्री रामचन्द्रजी जब चौदह वर्ष के वनवास

पर निकले, तब वे अपनी अनन्य भक्त माता शबरी की झोपड़ी में पधारे। वर्षों बाद जब शबरी को अपने आराध्य प्रभु श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन हुए, तो वे इतनी भावविभोर हो गयीं कि वे मीठे बेर खिलाने की इच्छा से स्वयं चख-चखकर श्रीरामचन्द्र जी को खाने के लिए देने लगीं। भगवान् श्रीरामचन्द्र जी शबरी की भक्ति के वशीभूत उनके दिये जूठे बेर भी खुशी-खुशी खाने लगे। उन्होंने कुछ बेर अपने अनुज लक्ष्मण को भी दिये। लक्ष्मणजी ने भैया का मान रखते हुए बेर ले तो लिये, पर खाये नहीं। माना जाता है कि इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि कालान्तर में वनवास के दौरान राम-रावण युद्ध में जब शक्ति-बाण लगने से लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये थे। उस समय बेर से बनी हुई संजीवनी बूटी से उनका जीवन बचाया गया था।

जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने शबरी से जाने की अनुमति माँगी, तब शबरी ने कहा – जिस राम की प्रतीक्षा में मैंने अपना पूरा जीवन बिता दिया, अब उन्हें कैसे जाने की अनुमति दे दूँ। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी का नाम-स्मरण करते हुए देहत्याग दिया। श्रीरामचन्द्रजी ने ही उनका अन्तिम संस्कार किया था।

शिवरीनारायण मन्दिर का इतिहास

रामायण काल में मतंग ऋषि के जिस आश्रम में प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ने भक्त माता शबरी के बेर खाये थे, वह वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्य के जाँजगीर-चाम्पा जिले के शिवरीनारायण नामक स्थान पर स्थित है। महानदी, शिवनाथ और जोंक नदी के त्रिधारा संगम पर बसा है – शिवरीनारायण। माता शबरी की स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए शबरीनारायण नगर बसाया गया, जो कालान्तर में शिवरीनारायण हो गया है। माता शबरी की अनन्य भक्ति भाव से भीगी इस पावन धरा पर शिवरीनारायण के पास खरोद में विश्व का एकमात्र शबरी मन्दिर स्थित है। पौराणिक कथाओं के अनुसार रामायणकाल से ही यहाँ शबरीजी का आश्रम है। ऐसी मान्यता है कि भगवान जगन्नाथ की विग्रह मूर्तियों को शिवरीनारायण से ही ओड़िसा के जगन्नाथपुरी में लाया गया है। कहा जाता है कि हर साल माघी पूर्णिमा के दिन भगवान जगन्नाथ यहाँ नारायण रूप में विराजते हैं। छत्तीसगढ़ की जगन्नाथपुरी के नाम से विख्यात शिवरीनारायण प्राकृतिक छटा से परिपूर्ण एक सुन्दर नगरी है।

प्रो. अश्विनी केसरवानी जी ने अपनी पुस्तक 'शिवरीनारायण – देवालय एवं परम्पराएँ' में लिखा है – चारों दिशाओं में अर्थात् उत्तर में बदरीनारायण, दक्षिण में रामेश्वरम्, पूर्व में जगन्नाथपुरी और पश्चिम में द्वारिकानाथ स्थित हैं। लेकिन मध्य में 'गुप्तधाम' के रूप में शिवरीनारायण स्थित हैं। याज्ञवल्क्यसंहिता एवं रामावतार-चरित्र में उल्लेख है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का नारायणी रूप यहाँ गुप्त रूप से विद्यमान है। इसलिए शिवरीनारायण को गुप्त तीर्थधाम भी कहा जाता है। यह नगर सतयुग में बैकुण्ठपुर, त्रैतायुग में रामपुर, द्वापरयुग में विष्णुपुरी और नारायणपुर के नाम से विख्यात था, जो आज शिवरीनारायण के नाम से जाना जाता है।

मैकल पर्वत-श्रृंखला की तलहटी में अपने अप्रतिम सौन्दर्य के कारण और चतुर्भुजी विष्णु मूर्तियों की अधिकता के कारण स्कन्दपुराण में इसे 'श्रीनारायण क्षेत्र' और 'श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र' कहा गया है। प्रतिवर्ष माघ पूर्णिमा से यहाँ एक बृहत् मेले का आयोजन होता है, जो महाशिवरात्रि तक चलता है। इस मेले में हजारों-लाखों दर्शनार्थी भगवान नारायण जी के दर्शन करने के लिए आते हैं।

शिवरीनारायण मन्दिर की स्थापत्य कला और मूर्ति-कला

शिवरीनारायण मन्दिर को बड़ा मन्दिर एवं नर-नारायण मन्दिर भी कहा जाता है। यह मन्दिर प्राचीन स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला का बेमिसाल है। ऐसी मान्यता है कि इसका निर्माण राजा शबर ने करवाया था। यहाँ नौवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक की प्राचीन मूर्तियों की स्थापना है। मन्दिर की परिधि १३६ फीट तथा ऊँचाई ७२ फीट है, जिसके ऊपर १० फीट के स्वर्णिम कलश की स्थापना है। शायद इसीलिए इस मन्दिर का नाम बड़ा मन्दिर भी पड़ा है। सम्पूर्ण मन्दिर अत्यन्त सुन्दर तथा अलंकृत है, जिसमें चारों ओर पत्थरों पर नक्काशी करके लता-वल्लरियों एवं पुष्पों से सजाया गया है। मन्दिर अत्यन्त भव्य दिखायी देता है।

शिवरीनारायण में कई अन्य मन्दिर भी हैं, जो विभिन्न कालों में निर्मित हुए हैं। चूँकि यह नगर विभिन्न समाज के लोगों का सांस्कृतिक तीर्थ है। इसलिए उन समाज के लोगों द्वारा यहाँ कई मन्दिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार भी कराया

शेष भाग पृष्ठ ५२२ पर

भाई दूज विशेष

भाई दूज

श्रीमती जगदीश्वरी चौबे

वाइस ओभर आर्टीस्ट, दूरदर्शन केन्द्र, वाराणसी

पंच दिवसीय पर्व दीपावली के पाँचवें दिन यानि कार्तिक शुक्ल द्वितीय तिथि को भाई दूज मनाने की परम्परा है। ऐसी मान्यता है कि यह पर्व भाई-बहन के पवित्र रिश्ते को मजबूत करता है। ऐसा माना जाता है कि इस दिन बहन द्वारा भाई का तिलक करने से भाई की हर प्रकार से रक्षा होती है और भाई को दीर्घायु जीवन प्राप्त होता है। हमारे देश के अलग-अलग स्थानों पर इस पर्व को अलग-अलग नामों से जाना जाता है। जैसे पश्चिमी उड़ीसा में भाई जियुंतिया, महाराष्ट्र, गुजरात, गोवा और कर्नाटक राज्यों में मराठी, गुजराती और कोंकणी भाषी समुदायों के बीच इसे भाऊ बीज कहा जाता है।

इस पर्व का एक और नाम 'यम द्वितीया' भी है, जो मृत्यु के देवता यम और उनकी बहन यमुना की एक प्रसिद्ध पौराणिक कथा के आधार पर पड़ा है। कथा इस प्रकार है –

यमराज और यमुना दोनों ही सूर्यदेव की संतान हैं। यमराज अपनी बहन यमुना को बहुत प्रेम करते थे। एक बार उन्हें अपनी बहन की बहुत याद आ रही थी। उसे देखे हुए बहुत दिन हो गये थे। तब अचानक यमराज अपनी बहन युमना के घर पहुँच गए। भाई को देखकर यमुना अति प्रसन्न हुई। उन्होंने भाई के स्वागत के लिए ढेरों पकवान बनाए। जब यमराज वापस जानेवाले थे, तो यमुना ने उनके मस्तक पर तिलक किया और मिष्टान्न खिलाया और अपने भाई यमराज को एक नारियल भेंटस्वरूप दिया। इसके बाद यमराज ने अपनी बहन से कहा कि वह उनसे उपहारस्वरूप एक वरदान माँग ले।

तब यमुनाजी ने कहा कि, भइया मेरे पास सब कुछ है। केवल आपसे विनती है कि आप प्रति वर्ष इस दिन कम से कम एक बार मेरे घर अवश्य आएँ। यमराज ने तथास्तु बोल दिया और यह भी कहा कि आज के दिन मैं ही नहीं, बल्कि जो भी भाई अपनी बहन के घर जाकर उससे माथे पर तिलक करवाएगा, उस भाई को मैं यानि यमराज लम्बी उम्र का आशीष दूँगा। उसके जीवन का हर संकट दूर हो जायेगा।

भाई दूज के दिन का प्रारम्भ यमराज और यमुना जी ने किया था, इसलिए भाई और बहन दोनों ही तिलक करने से पहले यमराज और यमुनाजी की पूजा करते हैं। इसके बाद बहन भाई का तिलक करती है। पूजा के समय बहन भाई की सभी कठिनाइयों को दूर करने और उसे लम्बी आयु प्रदान करने की प्रार्थना करती है। तिलक कराते हुए भाई का मुँह उत्तर या उत्तर-पश्चिम में से किसी एक दिशा में होता है और बहन का मुँह उत्तर-पूर्व या पूर्व दिशा में होता है। भाई को तिलक करने से पहले तक बहन व्रत रखती है और उसकी निष्ठा, प्रेम और समर्पण से भगवान भी प्रसन्न होते हैं, जिससे भाई और बहन के बीच का सम्बन्ध अच्छा बना रहता है। बहन तिलक करने के बाद ही अपना व्रत खोलती है।

तिलक करने के बाद बहन भाई को अपने हाथों से मिष्टान्न खिलाती है। ऐसा करना शुभ माना जाता है। भाई का बहुत आदर-सत्कार, स्नेह-दुलार करने के बाद विदा के समय बहन भाई को नारियल उपहारस्वरूप देती है, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि यमुनाजी ने अपने भाई यमराज को भाई दूज के दिन तिलक लगाने के बाद मिठाई खिलाकर और नारियल देकर विदा किया था, जिससे यमराज बहुत प्रसन्न हुए थे और अपनी बहन यमुना को बहुत आशीर्वाद दिया था। इसके साथ ही भाई भी अपनी बहन को भाई दूज के दिन सामर्थ्य के अनुसार कुछ-न-कुछ उपहार अवश्य देता है।

हमारे देश में हर त्यौहार और पर्व को मनाने के पीछे बहुत सारे संकेत या वैज्ञानिक कारण जुड़े होते हैं। जैसे किसी विशेष त्यौहार में खास व्यंजन बनाने की परम्परा होती है।

उसके पीछे भी वैज्ञानिक तथ्य होते हैं। जैसे दीपावली के दिन उत्तर भारत में सूरन खाने की परम्परा है। इसका कारण यह है कि सूरन खाने से त्वचा सम्बन्धित बीमारियों के होने का खतरा कम होता है। अगर वर्ष में एक दिन भी इसका सेवन किया जाये, तो लाभकारी होता है। इसी लाभ को देखते हुए प्राचीन काल से दीपावली के दिन सूरन खाना परम्परा में शामिल कर लिया गया ।

नवरात्रि में व्रत के साथ पूजा-पाठ और कन्या-पूजन की परम्परा है। नवरात्रि का समय मौसम के परिवर्तन का समय होता है। इसलिये उस समय व्रत-उपवास करने की परम्परा है, जिससे उस समय हलका भोजन करके हम अपने शरीर को स्वस्थ रख सकें। चैत्र नवरात्र के समय ही नया चना और गुड़ खाने की परम्परा है। यही वह समय है, जब खेतों में नया चना आता है। इसी समय किसान वर्ष भर के लिए गुड़ तैयार करके रखते हैं। ऐसे ही खाने-पीने के साथ-साथ सम्बन्धों की मर्यादा और उनके महत्त्व तथा आवश्यकता को समझाने के लिए भी कुछ त्यौहार मनाये जाते हैं। जैसे तीज और करवा चौथ पति-पत्नी के सम्बन्ध को और मजबूत करता है। गणेश चतुर्थी का पर्व (जो कि वर्ष में दो बार माघ और भादो में मनाया जाता है) और जीवित्पुत्रिका का पर्व, जिसे माँ अपने पुत्र के दीर्घायु जीवन की कामना से करती है। इस पर्व से माता और पुत्र का सम्बन्ध मजबूत होता है। ऐसे ही भाई-बहन के पवित्र सम्बन्ध को मजबूत बनाता है भाई दूज का पर्व।

हमारे देश में मनाए जाने वाला प्रत्येक त्यौहार सम्बन्धों को प्रगाढ़ और मजबूत बनाता है। जब हम कन्या-पूजन करते हैं, तब हम यह स्वीकार करते हैं कि हर कन्या देवी का स्वरूप है और उसे उसी सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। दुर्गा-पूजा करते हैं, तो यह मानते हैं कि नारी शक्ति भी है। जब तीज या करवा चौथ का व्रत रखते हैं, तब पुरुष को परमेश्वर का स्थान देते हैं। वर्ष भर परिवार के सदस्य कहीं भी रहें, होली का त्यौहार ऐसा है कि उस समय पूरा परिवार एक साथ होता है। इससे घर के सदस्यों के बीच एकता स्थापित होती है। आपसी सम्बन्ध और मजबूत होते हैं। सोमवती अमावस्या और वट सावित्री का व्रत पेड़-पौधों से जुड़ा है। जब हम पेड़-पौधों की पूजा करते हैं, तब जीवन में उनकी महत्ता को समझते हैं।

रक्षाबन्धन और भाई-दूज में भाई बहन के घर जाकर तिलक लगवाता है, राखी बँधवाता है। इसके पीछे कथा कोई भी हो, किन्तु इसका उद्देश्य भाई-बहन के बीच प्रेम का अक्षुण्ण रहना ही है। यह परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। तब बहुत साधन नहीं होते थे। कम उम्र में लड़कियों का विवाह हो जाता था और वे अपने ससुराल चली जाती थीं। तब बेटियों का मायके बार-बार आना सम्भव नहीं होता था। शायद कुछ नियम और परम्पराओं के मूल में यही कारण छिपा होगा, जिससे बेटियों का मायके से सम्बन्ध बना रहे। बेटियाँ सावन में मायके आएँ और भाई दूज पर भाई उनसे मिलने उनसे तिलक लगवाने जाएँ। इन परम्पराओं के मूल में जाएँगे, तो हमें अपने पूर्वजों पर गर्व होगा, जिन्होंने ऐसे नियम बनाए, जिससे हम पारिवारिक सम्बन्धों का महत्त्व समझ सकें। उन्होंने व्रत के माध्यम से मौसम के अनुसार खान-पान की परम्परा बनाई, प्रकृति और पेड़-पौधों की रक्षा के लिए उनसे जुड़े व्रत और पूजा-पाठ करने के नियम बनाये, जिसे अपनाकर हम अपना वर्तमान ही नहीं, भविष्य की पीढ़ियों का जीवन सँवार सकते हैं। ○○○

पृष्ठ ४९४ का शेष भाग

माँ को प्रणाम कर रहे थे, तभी गर्भगृह की ओर से आवाज आई – 'अमुक योग-केन्द्र जाओ, वहाँ तुम्हारा सिर-दर्द ठीक हो जाएगा।' भक्त ने आँखें खोलकर देखा, आस-पास कोई नहीं था। भक्त ने उस योग-केन्द्र का नाम कभी सुना नहीं था। अन्य लोगों से पूछने पर जानकारी प्राप्त हुई और वे योग-केन्द्र गये, जहाँ एक-दो महीने योगाभ्यास आदि के बाद वे सिर-दर्द से सदा के लिए मुक्त हो गये।

३. एक भक्त उज्जैन के महाकाल-मन्दिर गये थे। दर्शन-पूजन के बाद गर्भगृह से बाहर आकर एक खाली स्थान देख बैठ गये। मन पूरी तरह भगवान् महाकालेश्वर में भावाविष्ट था। अकस्मात् बैठे-बैठे भक्त को लिंग-विग्रह के स्थान पर सशरीर आधे लेटे हुए भगवान् महाकालेश्वर का रूप दिखने लगा। भाव में ही भक्त ने उन्हें प्रणाम किया और दाहिना हाथ उठाकर भगवान् महाकालेश्वर ने मुस्कुराते हुए कहा – 'विजयी भव।'

उपर्युक्त विवरण से प्रमाणित है कि मन्दिरों में भगवान् की प्रतिमा भर नहीं होती, बल्कि उसमें साक्षात् भगवान रहते हैं। यदि हम निष्ठापूर्वक मन्दिर में भगवान को पुकारें और वे कृपा कर दें, तो हम भी उनके दर्शन, स्पर्श, सम्भाषण आदि का सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन

तेरहवाँ अध्याय (१३/१)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १३वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

ज्ञानयोग का प्रारम्भ

तेरहवें अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का विचार किया गया है। आप सभी जानते हैं कि गीता में १८ अध्याय हैं और उन्हें तीन भागों में बाँट दिया गया है। पिछले छह अध्यायों में ज्ञान की चर्चा हुई है तथा बीच के छह अध्यायों में भक्ति और अन्तिम छह अध्यायों में कर्म का प्रतिपादन किया गया है। ऐसा एक मत कहता है। दूसरा मत यह कहता है कि पहले के छह अध्यायों में भगवान ने कर्म की चर्चा की, इसीलिए कर्म पर विस्तार से विचार किया। बीच छह अध्यायों में भक्ति की चर्चा की और जो अन्त के छह अध्याय हैं, वे ज्ञानपरक हैं।

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।।१।।

श्रीभगवान उवाच (श्रीभगवान बोले) कौन्तेय इदम् शरीरम् क्षेत्रम् (हे अर्जुन! यह शरीर क्षेत्र) इति अभिधीयते (इस नाम से पुकारा जाता है) एतत् यः वेत्ति (और इसको जो जानता है) तम् क्षेत्रज्ञः इति (उसको क्षेत्रज्ञ) तद्विदः प्राहुः (इस प्रकार से कहते हैं)।

"हे अर्जुन! यह शरीर क्षेत्र इस (नाम से) पुकारा जाता है (और) इसको जो जानता है उसको क्षेत्रज्ञ इस प्रकार से कहते हैं।"

यहाँ पर विचार की दृष्टि से भगवान ने जीवन तत्त्वों को हमारे समक्ष उपस्थित किया और विवेचन करते हुए पुरुष और प्रकृति का भेद, क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ का भेद, हमारे समक्ष रखा। हम इसे समझने का प्रयास करेंगे क्योंकि यह भेद हमारे जीवन में कल्याण उपस्थित करता है। इस अध्याय का नाम है – "क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-विभाग-योग"।

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ ज्ञान : मनुष्य और उसके स्वभाव का विवेचन

आप सभी जानते हैं कि प्रत्येक अध्याय को 'योग' के नाम से पुकारा गया है। इस तेरहवें अध्याय के नामकरण में कुछ वैचित्र्य है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, इन दोनों का विभाजन कर देना या किन्हीं-किन्हीं संस्करणों में जैसे इसका नाम रखा गया है - 'पुरुष-प्रकृति-विभागयोग'; अर्थात् पुरुष और प्रकृति का विभाजन कर देना; जो कि अत्यन्त गूढ़ तथ्य है और हमारे समक्ष इस तेरहवें अध्याय के माध्यम से रखा जाता है। वैसे तो भगवान ने गीता के भिन्न-भिन्न अध्यायों में भिन्न-भिन्न दृष्टि से इसी तथ्य की चर्चा की। हमारा मानव-जीवन है। हम इस जीवन को समझने का प्रयास करते हैं। स्वाभाविक ही यह प्रश्न उठा करता है कि जीवन का तात्पर्य क्या है? इस जीवन के द्वारा हम किस तथ्य को पाने का प्रयास कर रहे हैं, यह प्रश्न बहुधा हमारे मन में उठा करता है। इस प्रश्न की मीमांसा करते हुए भी हमारे समक्ष हमारे शास्त्रों ने अपने वचनों को रखा। गीता में भी इस प्रश्न का

उत्तर दिया गया। यदि संक्षेप में हम इस उत्तर को आपके समक्ष रखें, तो वह इस प्रकार होगा – हमारा जो मूलस्वरूप है, वह ब्रह्म है। हम अनन्त शक्ति के अधिकारी हैं। अनन्त ज्ञान हमारा स्वभाव है। इस स्वभाव पर अज्ञान का आवरण पड़ा हुआ है। इसीलिए हम अपने आपको दुर्बल, कमजोर मानते हैं। अपने को अज्ञानी समझते हैं और वैसा समझने के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार के दु:खों का भोग करते हैं। जब हम साधना के द्वारा ज्ञान के बाधक तत्त्व को दूर कर देते हैं, तब हमारे भीतर का ईश्वरत्व अपने-आप प्रकट होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी रामचरितमानस में इसी बात को समझाते हुए कहते हैं –

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी।।
सो मायाबस भयउ गोसाईं।
बँध्यो कीर मरकट की नाईं।। ७/११६(ख)/२-३

उन्होंने यह सिद्धान्त हमारे समक्ष रख दिया। यह जीव ईश्वर का अंश है और ईश्वर का अंश होने के कारण ईश्वर के ही समान चैतन्य, ईश्वर के ही समान निर्मल, ईश्वर के ही समान अविनाशी और ईश्वर के ही समान सहज आनन्द की खान है, पर व्यवहार में इस प्रकार का अनुभव तो नहीं होता। इसके विपरीत हम जीव को विनाशी देखते हैं, दु:खों से भरा हुआ देखते हैं। उसके भीतर मैला देखते हैं और हम जीव को जड़ के रूप में देखा करते हैं। यह विपरीत अनुभव क्यों? गोस्वामीजी इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि इसका कारण है – माया। जीव कीट और मरकट की तरह माया से बँध गया है और इस माया को, इस अज्ञान को दूर करना ही समस्त शास्त्रों का प्रयोजन है।

गीता में भी इसी माया को दूर करने के उपाय बताए गए हैं। अब तेरहवें अध्याय का दृष्टिकोण अलग है। हमारे सामने लक्ष्य तो वही है, पर उपाय में जोर दिया गया है इसी एक भाग पर, इसी एक दृष्टि पर कि जब हम अपने-आपको देखते हैं, तो एक शरीर दिखाई देता है और इस शरीर के भीतर इसको चलानेवाला चैतन्यवान है, इस प्रकार की अनुभूति होती है। मैं कहता हूँ कि यह मेरा शरीर है। मैं कहता हूँ कि ये मेरी इन्द्रियाँ हैं, मैं अपने कानों से सुनता हूँ। इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग व्यवहार में मैं करता हूँ। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मैं मन ही मन यह मानता हूँ कि यह जो शरीर है, यह मेरा है और इसे 'मेरा' कहनेवाला इस शरीर से भिन्न है, ऐसी एक कल्पना हमारे मन में उठा करती है। कुछ भौतिकवादी लोगों का मानना है कि शरीर ही तो 'मैं' और 'मेरा' कहता है। यद्यपि केवल व्यवहार के लिए 'मैं' और 'मेरा' का प्रयोग होता है, पर वस्तुत: शरीर-इन्द्रियों आदि से भिन्न और कोई तथ्य नहीं है। ये शरीर और इन्द्रियाँ जीवन की समूची व्याख्या कर देती हैं। ऐसे व्यक्तियों की जो वृत्ति है, वह शरीरपरक है। शरीर तक ही उनकी दृष्टि जाती है। शरीर से परे वे और कुछ नहीं देखते। मन, इन्द्रिय इत्यादि को शरीर के साथ ही वे ग्रहण करते हैं और उनका ऐसा कहना है कि शरीर के भीतर ऐसे किसी चैतन्यतत्त्व को मानने का प्रयोजन नहीं है, जो चैतन्यतत्त्व इस शरीर से, मन-इन्द्रिय इत्यादि से अलग रहकर उनका परिचालना करता है। इस तर्क में जो दोष है, उसे आपके समक्ष रखने का प्रयास किया जाएगा।

शरीर अलग और उसे चलानेवाला अलग

दो तत्त्व हमें मानने ही पड़ेंगे। एक वह जो हमें दिखाई देता है और दूसरा वह जो हमें दिखाई नहीं देता। जो दिखाई नहीं देता, वह दिखाई देनेवाले तत्त्व का स्वामी है। इन्हीं दो तत्त्वों को यहाँ 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ' इन दो नामों से पुकारा गया है। क्षेत्र का मतलब होता है खेत। इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि जो आत्मा शरीर के भीतर है, उसकी रक्षा मानो शरीर का आवरण करता हो। ठीक उसी तरह जैसे फल का छिलका फल के गूदे की रक्षा करता है। इस प्रकार शरीर खेत (क्षेत्र) हुआ और आत्मा किसान (क्षेत्रज्ञ) हुआ। क्षेत्रज्ञ क्षेत्र को जाननेवाले को कहते हैं। जो खेत को जानता है, उसका स्वामी है अर्थात् किसान; वह अपने खेत को ठीक-ठीक जानता है कि उसके खेत की जमीन कैसी है? उस खेत में से किसी विशेष फसल को पाने के लिए उसे क्या-क्या करना होगा? उस जमीन में पैदा होनेवाली उपज कैसी होगी? अधिक उपज प्राप्त करने के लिये उसे क्या करना पड़ेगा? उस खेत को कहाँ से बाँधना होगा? उसमें कितने पानी का सींचन करना होगा। अपने खेत-विषयक इन सब बातों को एक किसान अच्छी तरह जानता है। वह यह भी जानता है कि यदि उसे गेहूँ की फसल काटनी है, तो उसी के अनुसार परिश्रम भी उसे करना होगा। धान की फसल लेनी है, तो उसके लायक जमीन को जोतना और परिश्रम करना पड़ेगा। यदि उस जमीन पर फलों के वृक्ष

लगाने हैं, तो उसके अनुसार चेष्टा करनी पड़ेगी। तो कुशल किसान यह जानता है कि खेत से उसे जो प्राप्त करना है, उसके लिए उसे क्या प्रयास करना है। ठीक इसी प्रकार इस शरीररूपी खेत की मिट्टी को जो जानता है और उसमें से विभिन्न परिणाम प्राप्त करने के लिए उसे क्या करना पड़ेगा, यह जाननेवाले को कहा गया 'क्षेत्रज्ञ'। इसीलिए यहाँ भगवान कहते हैं, 'हे कौन्तेय! क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को जो विभाजन करके जानता है, वही यथार्थ में जानता है। यह जानने का प्रयोजन इसलिए हुआ कि मनुष्य अपने सामने एक लक्ष्य रखता है, जैसे 'हमारा लक्ष्य है भगवान को प्राप्त करना।' ज्ञान की भाषा में यों समझें – ''जो असली तत्त्व हमारे भीतर बैठा है, उसे प्रकट कर देना।'' जैसे स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे - "Each soul is potentially divine. The goal is to manifest this divinity within by controlling nature internal and external." प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है। प्रत्येक आत्मा के भीतर यह ब्रह्म छिपा है और इसी छिपे ब्रह्म को प्रकट करना है। हमारे भीतर पूर्णता छिपी है, ईश्वरत्व ढका हुआ है। इस ईश्वरत्व को हमें प्रकट करना है। कैसे प्रकट करना है? ये जो बाहर और भीतर की प्रकृतियाँ हैं, इन दोनों का नियन्त्रण करके अपने भीतर के पूर्णत्व को प्रकट करना ही इस जीवन का लक्ष्य है। हम सभी अपने भीतर की भगवत्ता को, ईश्वरत्व को प्रकट करना चाहते हैं। बस, इसी के लिये ये सारे उपाय हैं। गीता का तेरहवाँ अध्याय जो रास्ता बताता है, वह है ज्ञान-प्रधान, विचार-प्रधान, विवेक-प्रधान। हम विचार करें, विवेक करें कि यह जो शरीर हमें दिखाई देता है, यह उस भीतरी तत्त्व से भिन्न है या नहीं।

नोबल-पुरस्कार विजेता एक वैज्ञानिक ने एक बड़ी ही सुन्दर पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है – Man - the Unknown (मनुष्य का अज्ञात रूप)। उसमें वे यह बताते हैं कि मनुष्य के दो रूप दिखाई देते हैं – एक ज्ञात और दूसरा अज्ञात। ज्ञातरूप तो यह हुआ कि हम बता सकते हैं कि अमुक मनुष्य की ऊँचाई क्या है, वजन क्या है, उसका रंग-रूप कैसा है; जो कि हम किसी भी मनुष्य को बाहर से देखकर बता सकते हैं। पर यह तो मनुष्य का एक आंशिक वर्णन हुआ। मनुष्य केवल इतना ही नहीं है। उसके रूप का एक बहुत बड़ा अंश तो इस दीखनेवाले अंश के भीतर है, जो दिखता नहीं है। उसी को कहते हैं मनुष्य का अज्ञात स्वरूप। जब हम किसी मनुष्य को जानने की बात कहते हैं, तो उसके ज्ञात और अज्ञात रूपों को मिलाकर ही उसके बारे में पूरा ज्ञान होता है। तो उन वैज्ञानिक का कहना है कि ज्ञान के क्षेत्र में हम गड़बड़ी यह करते हैं कि जो इन्द्रियों से दिखाई देता है, उसको तो ज्ञात मान लेते हैं और जो दिखाई नहीं देता और जो वस्तुत: अभी अज्ञात है, उसको जाने बिना ही हम कह देते हैं कि हमने मनुष्य को जान लिया। यह बात गलत है और इसीलिए हमारी जानकारी पूरी हो नहीं पाती। ज्ञात को तो हम जानते ही हैं, अज्ञात को भी जानने का तरीका यदि हम जान लें, तब तो मनुष्य को पूरा जान सकते हैं। यहाँ पर जो क्षेत्र या खेत है, वह तो ज्ञात रूप है और जो क्षेत्रज्ञ है, वह अज्ञात रूप है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ५१७ का शेष भाग

गया है। वैसे यहाँ के बहुसंख्यक मन्दिर भगवान विष्णु के विभिन्न अवतारों के हैं। कदाचित् इसी कारण इस नगर को वैष्णव पीठ भी माना गया है। इसके अलावा यहाँ शैव और शाक्त परम्परा के अनेक प्राचीन मन्दिर भी हैं। इनमें प्रमुख हैं – माँ अन्नपूर्णा मन्दिर, भगवान नारायण मन्दिर, लक्ष्मी-नारायण मन्दिर, चन्द्रचूड़-महादेव मन्दिर, केशवनारायण मन्दिर, श्रीरामलक्ष्मण-जानकी मन्दिर, जगन्नाथ मन्दिर, बलभद्र और सुभद्रा से युक्त श्रीजगदीश मन्दिर, श्रीराम-जानकी मन्दिर, राधाकृष्ण मन्दिर, काली मन्दिर, शीलतामाता मन्दिर और माँ गायत्री मन्दिर।

मन्दिर कैसे पहुँचे?

शिवरीनारायण जिला मुख्यालय जांजगीर-चाम्पा से लगभग ४५, बिलासपुर से ६१, रायगढ़ से १०० और रायपुर से १३० किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इन चारों ही शहरों से यहाँ सड़कमार्ग से आसानी से पहुँचा जा सकता है। जांजगीर-चाम्पा, बिलासपुर, रायगढ़ और रायपुर तक ट्रेन से और रायपुर तक सीधे हवाई मार्ग से भी पहुँचा जा सकता है। शिवरीनारायण किसी भी मौसम में जा सकते हैं। यहाँ लोगों को उनके बजट के अनुसार रहने के लिए धर्मशालाएँ आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं। शिवरीनारायण से जांजगीर-चाम्पा, बिलासपुर, रायगढ़ और रायपुर तक आवागमन हेतु आसानी से सार्वजनिक एवं निजी वाहन मिल जाते हैं। (कल्याण से साभार) ○○○

साधुओं के पावन प्रसंग (७०)

स्वामी निखिलानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

तदुपरान्त मैंने महाराज से कहा, ''महाराज, क्या आप मुझे Gospel of Sri Ramakrishna की एक प्रति देंगे?'' उन्होंने साथ-ही-साथ सेवक को Gospel की एक प्रति ले आने के लिए कहा। मुझे प्रति देने के समय मैंने कहा, ''महाराज आप अपना हस्ताक्षर कर दीजिए।'' उन्होंने हँसते हुए कहा, ''यह देखो, जिस समय तुम अमेरिका में आये, उसी समय से अमेरिकावासी हो गये हो।''

तदुपरान्त उन्होंने Gospel खोलकर लिखा : To Chetanananda from Nikhilananda With love and best wishes-Nikhilananda, 10.6.71. पूजनीय महाराज की दी हुई पुस्तक अभी भी मेरे साथ है।

तदनन्तर महाराज मुझे अपने साथ भोजन-कक्ष में ले गये। स्वामी आदीश्वरानन्द जी महाराज उस समय निखिलानन्दजी के सहकर्मी थे। एक महिला रसोइया ने हमारे लिए खिचड़ी, पकौड़ा, सब्जी, चटनी तथा मिठाई बनाकर हमलोगों को परोसा। उसके अगले दिन मैं हॉलीवुड चला गया।

प्रति वर्ष जुलाई-अगस्त महीने में निखिलानन्दजी सहस्त्रद्वीपोद्यान में ग्रीष्मावकाश व्यतीत करते थे। १९७२ ई. में ग्रीष्म की छुट्टी में मैं सेन्ट लुईस, शिकागो, बॉस्टन होकर १४ अगस्त को सहस्त्रद्वीपोद्यान पहुँचा तथा २४ अगस्त तक था। वहाँ पर तीन कुटिया थी। विवेकानन्द कुटिया में साधु तथा पुरुष भक्तगण रहते थे; सारदा कुटिया में महिलाएँ रहती थी; और स्वामी निखिलानन्द का स्वयं की कुटिया सेन्ट लॉरेन्स नदी के पास थी। वहाँ पर वे उपनिषद् पर कक्षा लेते थे तथा पढ़ाई-लिखाई करते थे।

महाराज की स्मृतिशक्ति क्रमश: कम होती जा रही थी। उन्होंने मुझसे पूछा, ''तुम कहाँ से आये हो?'' मैंने कहा, ''हॉलीवुड से।'' थोड़ी देर के बाद उन्होंने वही बात पुन: पूछा। वे बरामदे में आरामकुर्सी पर बैठकर सेंट लोरेन्स नदी के ऊपर सूर्यास्त देखते थे। दोपहर में हमलोग विवेकानन्द कुटिया में तथा रात्रि में सारदा कुटिया में भोजन करते थे। महिला-भक्तगण भोजन बनाती थीं। महाराज भोजन के समय विविध प्रकार की वार्ता करते थे। वे वार्तालाप तथा परिहास बहुत पसन्द करते थे। कितने आनन्द से वह दस दिन व्यतीत हुआ, इसे व्यक्त करना कठिन है।

प्रत्येक दिन सन्ध्या चार बजे विवेकानन्द कॉटेज में महाराज को गाड़ी से ले आना होता था। तदुपरान्त व्हील चेयर में बैठाकर नीचे तल्ले के बैठकखाना में बैठाया जाता था। तदनन्तर हम सभी लोग एक साथ ही चाय पीते थे। तत्पश्चात् ५ बजे ऊपर में स्वामीजी के कमरे में सन्ध्या आरती तथा जप-ध्यान होता था। वहाँ पर श्रीमाँ का मूल पदचिन्ह था तथा स्वामीजी द्वारा मिसेज लेगेट को दिया हुआ एक बड़ा कार्पेट था, उसके ऊपर हमलोग बैठते थे। स्वामी आदीश्वरानन्द हारमोनियम बजाकर आरती करते थे।

स्वामी निखिलानन्द जी के लिए स्वामीजी की ब्रांज मूर्ति के पास में एक कुर्सी थी। वे वहाँ पर बैठकर माला लेकर जप करते थे। उस समय उनको समय का बोध नहीं रहता था। एकाग्र मन से जप करते तथा आँखों से आँसू निकलते थे। एक घण्टा के बाद मैंने नीचे उतरते समय अपनी आँखों से देखा है कि श्रीमाँ के शिष्य कैसे जप में डूबे हुए हैं। सेवक द्वारा उनके हाथ से जप-माला नहीं लेने तक उनका जप रूकता नहीं था। सच में यह दृश्य भूलने का नहीं है। स्वामी निखिलानन्द जी का यही मेरा अन्तिम दर्शन था।

१९७३ ई. में वे पुन: सहस्त्रद्वीपोद्यान में गये थे। स्वामी आदीश्वरानन्द से सुना हूँ कि २१ जुलाई को महाराज डिनर टेबल पर आये और कुर्सी पर बैठे। भक्तों द्वारा भोजन परोसने के बाद सभी ने एक साथ, ''ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हर्विब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।' की आवृति की तथा इस आवृति के अन्त में उन्होंने कुर्सी के ऊपर ही शरीर-त्याग कर दिया। गीता के इस मन्त्र का अर्थ स्रुवा

(अग्नि में घी डालने का कलछुल) ब्रह्म है, घी ब्रह्म है, ब्रह्म रूम अग्नि में ब्रह्म रूप हवन कर्ता के द्वारा जो होम किया जाता है वह भी ब्रह्म है, जो इस प्रकार समझते हैं, उन ब्रह्म रूप कर्म में संयतचित्त व्यक्ति ब्रह्म को ही प्राप्त है।

रामकृष्ण संघ के इन सुलेखक, सुवक्ता, निपुण, विद्वान संन्यासी का जीवन सार्थक था तथा मृत्यु तो अद्भुत थी।

इसके बाद भी रहता है पुनश्च। रामकृष्ण संघ के अनेक साधुओं ने उपनिषद्, गीता तथा अन्यान्य वेदान्तशास्त्र का अंग्रेजी में अनुवाद किया है। बहुत-से साधुओं का अनुवाद अक्षरशः, कठिन तथा पाश्चात्य पाठकों के लिए दुर्बोध था। केवल रामकृष्ण संघ के साधुओं का ही नहीं, भारत के अनेक पण्डितों का अनुवाद, भावानुवाद बहुत प्रामाणिक नहीं है। इसमें स्वामी निखिलानन्द का उपनिषद् तथा गीता का अंग्रेजी अनुवाद प्रामाणिक तथा सुन्दर है और पाश्चात्य बुद्धिजीवियों में सम्मानित है। यह रामकृष्ण संघ के लिए गौरव का विषय है। श्रीरामकृष्ण कहते थे, सद्गुणी व्यक्ति के गुण को सम्मान देना चाहिए।

जब मैं ब्रह्मचारी था, तब निखिलानन्दजी के लेख देखने से ही पढ़ता था। उनके लेखन में आन्तरिकता, सरसता, सरलता, मादकता तथा नवीनता रहती थी। मैं सदा से ही नवीनता का पुजारी हूँ। हमलोगों ने ठाकुर के संन्यासी-शिष्यों को नहीं देखा है, किन्तु जिन्होंने उनलोगों का सत्संग किया है तथा उनकी स्मृतियाँ को बताया है, वे सब स्मृतियाँ हमारे लिए आध्यात्मिक सम्पदा हैं। निखिलानन्दजी की तीन स्मृतियाँ मेरे पास अविस्मरणीय हैं। Vedanta and the West पत्रिका की १२७वीं संख्या में निखिलानन्दजी की 'प्रेमानन्देर स्मृति' का मैंने अंग्रेजी से बंगाली में अनुवाद किया तथा वह स्मृति उद्बोधन पत्रिका के ७२वें वर्ष के छठवें अंक में प्रकाशित हुई।

प्रथम स्मृति : स्वामी ब्रह्मानन्द और स्वामी प्रेमानन्द १९१६ ई. में ढाका गये थे। निखिलानन्दजी उस समय छात्र थे तथा क्रान्तिकारी दल से संयुक्त थे। निखिलानन्दजी अपनी स्मृति में लिखते हैं –

मैंने कहा, ''किन्तु महाशय, आपलोग तो स्वामी विवेकानन्द को नहीं समझ पाये। हमलोगों ने उनकी पुस्तक में पढ़ा है। वे चाहते थे कि हमलोग भारत की स्वाधीनता के लिए युद्ध करें और क्रान्तिकारियों ने तो वही किया है। आपलोग स्वामी विवेकानन्द का उपदेश समझ नहीं पाये।''

इस प्रकार की बातें स्वामी प्रेमानन्द के लिए असहनीय थीं। उन्होंने डाँटते हुए कहा, ''मूर्खों का दल ! तुमलोग नहीं जानते किसके साथ बात कर रहे हो ! बीस वर्ष से भी अधिक समय से हम स्वामीजी को जानते हैं। हमलोग एक साथ रहे हैं, खेले हैं, बातें किये हैं, हमलोगों ने अपने कार्यों के विषय में चर्चा की है और हमलोग उनको नहीं जानते ! मूर्खों ! उनकी पुस्तक के दो पृष्ठ पढ़कर तुमलोग समझते हो कि उनको सम्पूर्ण रूप से समझ लिया?''

तदुपरान्त उन्होंने ब्रह्मानन्दजी की ओर देखकर कहा, ''महाराज, मूर्ख लोगों की बातें सुनी आपने? कहता है कि आप स्वामीजी को नहीं समझे ! आप क्या समझते हैं कि इनको घोड़े से अधिक बुद्धि है? देखूँ कि वह मुझे अपने पीठ पर बैठाकर ले जा पाता है कि नहीं।''

तेजी से वे बिस्तर छोड़कर उठ गये तथा मुझे नीचे होकर हाथ-पैर को घोड़ा जैसा करने को कहा। तदनन्तर मेरी पीठ के ऊपर अपने दोनों पैर को दोनों ओर रखकर कमरे के चारों ओर उनको लेकर घूमने के लिए कहा। उस समय सही में मैं एक घोड़ा था। मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया। एक-दो मिनट के बाद वे मेरी पीठ के ऊपर से उतर कर बोले, ''सब ठीक हो जायेगा।'' **(क्रमशः)**

पृष्ठ ५०६ का शेष भाग

कल्पवृक्ष बीज को लेकर वे दोनों विद्यानगर लौट आये। राजा हर्षवर्धन ने नदी के उत्स पर कल्पवृक्ष बीज का रोपण किया। पवित्र गंगा का जल फिर से पर्याप्त मात्रा में बहने लगा, भूमि पुनर्जीवित हुई और विद्यानगर में समृद्धि वापस आ गई। आर्यन और सरस्वती की बुद्धमित्ता और प्रज्ञता के लिए लोगों ने उत्सव का आयोजन करके उन्हें धन्यवाद दिया।

उसके बाद विद्यानगर बुद्धिमत्ता और प्रज्ञता के एक प्रकाश स्तम्भ के रूप में गौरवान्वित होने लगा। आर्यन और सरस्वती सम्माननीय व्यक्तित्व बन गए, उनका पारस्परिक ज्ञान का आदान-प्रदान इस गहन सत्य का साक्षी बन गया कि सच्ची शक्ति बुद्धिमत्ता और प्रज्ञता के सन्तुलन में है। एक जीवन्त प्रतीक के रूप में उनके मार्गदर्शन में राज्य का विकास हुआ। बुद्धिमत्ता और प्रज्ञता, जब एक साथ होते हैं, तब किसी भी विपत्ति को पार कर सकते हैं और एक उज्ज्वल भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त कर कर सकते हैं। ○○○

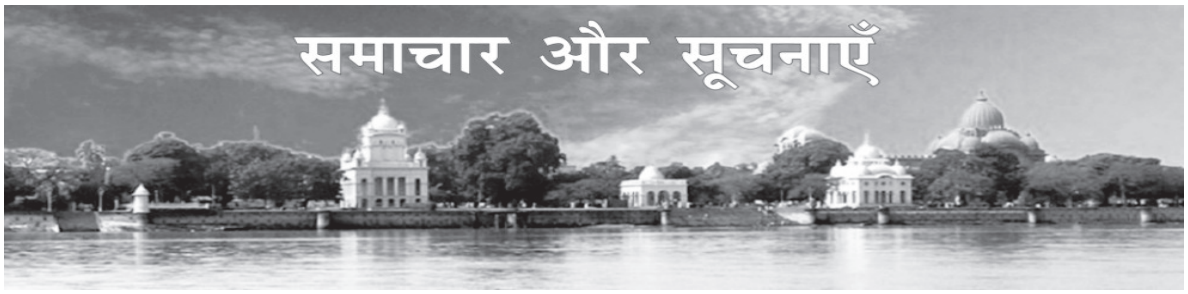

२५ जुलाई, २०२४ को **रामकृष्ण मिशन, ढालेश्वर, अगरतला** में विवेकानन्द सभागार का लोकार्पण रामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी दिव्यानन्द जी महाराज ने किया।

२७ और २८ जून, २०२४ को **रामकृष्ण मिशन, विवेक नगर, अगरतला** के आई.टी.आई. के छात्रों ने त्रिपुरा राज्यस्तरीय स्टुडेन्ट प्रोजेक्ट प्रोग्राम में त्रिपुरा स्टेट कौंसिल द्वारा विज्ञान और तकनीकि के लिये प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। ३० जून को आश्रम द्वारा विश्रामगंज में एकदिवसीय युवा सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें ३१५ युवाओं ने भाग लिया।

रामकृष्ण मठ, हैदराबाद ने २७ जुलाई, २०२४ को स्वर्ण जयन्ती के अंग के रूप में 'भारत की शैक्षिक दृष्टि और शिक्षाविदों की भूमिका' पर एक कार्यशाला और २८ जुलाई को भक्त सम्मेलन का आयोजन किया। इस कार्यक्रम में लगभग ११०० शिक्षाविद् और ६०० भक्तों ने भाग लिया।

भारतीय स्वास्थ्य संगठन ने १ जुलाई, २०२४ को **रामकृष्ण मिशन, मोराबादी, राँची** को शिक्षा और संस्कृति में इनके योगदान के लिये सम्मानित किया।

कोलकाता नगर निगम ने १९९६ में **रामकृष्ण मिशन संस्कृति संस्थान, गोलपार्क** को विरासत भवन (हेरीटेज बिल्डिंग) घोषित किया था। २०२४ में नगर निगम ने भवन के प्रवेश द्वार के पास ग्रेड वन हेरीटेज स्ट्रक्चर की एक नीली पट्टिका लगाई है।

रामकृष्ण मिशन, जम्मू में ११ और १२ जुलाई को एक स्थानीय स्कूल में शिक्षक कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें १०० शिक्षकों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा शैक्षिक सामग्री प्रदान की गयी

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा विगत कुछ वर्षों से ग्रामीण आदिवासी क्षेत्रों के स्कूलों में शैक्षिक सामग्री प्रदान की जा रही है। इसके अन्तर्गत इस वर्ष भी आश्रम के द्वारा छत्तीसगढ़ के महासमुंद जिले के १२ विद्यालयों – **१.** शासकीय प्राथमिक शाला, झारा ६१ **२.** शासकीय माध्यमिक विद्यालय, झारा ४५ **३.** शासकीय प्राथमिक शाला, चित्तमखार ३१ **४.** शासकीय प्राथमिक शाला, कोमा ४२ **५.** शासकीय प्राथमिक शाला, कोलदा ३४ **६.** शासकीय उच्च विद्यालय, बोईरगाँव, ३६ **७.** शासकीय प्राथमिक शाला, सोरम ६८ **८.** शासकीय प्राथमिक शाला, सिंघी २२ **९.** शासकीय माध्यमिक विद्यालय, सिंघी ८० **१०.** शासकीय प्राथमिक शाला, नायकबाँधा २५ **११.** शासकीय प्राथमिक शाला, पेनड्राडीह १८ **१२.** शासकीय प्राथमिक शाला, बम्बूरडीह ३८ – में कुल ५०० विद्यार्थियों को स्कूल बैग, पेन, पेन्सील, कटर, इरेजर, २ नोटबुक और स्केल प्रदान किया गया। इस वितरण-कार्य में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द के निर्देशन में विद्यालयीय सर्वेक्षण और वितरण में डॉ. कपिल चन्द्रा, डॉ. विनीत साहू और ८ स्वयंसेवकों ने प्रशंसनीय सहायता की।

२७ अगस्त, २०२४ को अपराह्न ३ बजे **विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर** में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के उपलक्ष्य में श्रीकृष्णचरित परिसंवाद का आयोजन किया गया, जिसमें डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने 'गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण' और स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने 'गीता गायक श्रीकृष्ण' पर व्याख्यान दिये। सभा की अध्यक्षता डॉ. चितरंजन कर जी ने की थी। इस सभा में छात्र, अध्यापक और भक्तों सहित लगभग ६०० लोगों ने भाग लिया।